चीन की सांस्कृतिक क्रांति

शिवदास घोष

चीन की सांस्कृतिक क्रांति

चीन की सांस्कृतिक क्रांति के तात्पर्य से आतंकित होकर विभिन्न देशों के साम्राज्यवादियों-पूंजीपतियों ने उसके बारे में दुष्प्रचार करना शुरू कर दिया। इसके चलते आम आदमी, यहां तक कि साम्यवादी हलकों में भी वे काफी कुछ विभ्रांति फैलाने में सक्षम हुए। कॉमरेड शिवदास घोष ने सांस्कृतिक क्रांति को मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण से शानदार की संज्ञा देते हुए और इसके तात्पर्य को लेकर विस्तार से विश्लेषण किया था।

चीन की सांस्कृतिक क्रांति के संबंध में मेरी जो प्रतिक्रिया है, उसे मैं आपके समक्ष रखूंगा। हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने इस विषय की समीक्षा कर अब तक कोई फैसला नहीं लिया है। इसलिए मैं जो वक्तव्य रखूंगा, उसे मेरा व्यक्तिगत अभिमत ही माना जाये। पार्टी की केन्द्रीय कमेटी द्वारा जब तक इस विषय में कोई विचार गृहीत नहीं हो जाता, तब तक यह चर्चा-बहस की विषयवस्तु मात्र ही है–इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। क्योंकि इसमें फेरबदल हो सकता है। केन्द्रीय कमेटी इसमें कुछ परिवर्तन व परिवर्द्धन ला सकती है एवं तब तक मैं भी इसमें कुछ परिवर्तन व परिवर्द्धन कर सकता हूं। चीन की इस सांस्कृतिक क्रांति के बारे में अब तक हमें जितने तथ्य मिले हैं या जो जानकारी प्राप्त हुई है, उसके आधार पर मेरी प्रतिक्रिया क्या है और इस विषय को पार्टी कार्यकर्ताओं द्वारा किस दृष्टिकोण से देखा जाना और ग्रहण किया जाना चाहिए, इसके बारे में मेरा जो विचार है, उसे मैं आपके समक्ष रख रहा हूं।

सांस्कृतिक क्रांति के बारे में दुनिया भर में तरह-तरह की भ्रांतियां

चीन की वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति को लेकर दुनिया के सभी देशों की बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं में काफी अटकलें लगायी जा रही

हैं और सांस्कृतिक क्रांति के बारे में तरह-तरह की खबरें जानबूझकर तथा नापाक इरादों से तोड़-मरोड़कर प्रचारित की जा रही हैं। लेकिन सबसे ज्यादा अफसोस की बात तो यह है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा से प्रेरित विभिन्न देशों के कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं में भी चीन की इस सांस्कृतिक क्रांति को लेकर नाना प्रकार की भ्रांतियां व्याप्त हैं। चीन का नेतृत्व जिन्हें पार्टी-विरोधी कार्य में लिप्त समझ रहा है, उन्हें पार्टी के अन्दरूनी संघर्ष (inner party struggle) की प्रचलित नीति को अपनाते हुए पार्टी से बाहर निकालने के बजाय वह पूरे देश के जनसमूह को इतने विशाल पैमाने पर वैचारिक द्वन्द्व-संघर्ष में खुलेआम शामिल करने की पद्धति को सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी सहित कुछ दूसरे कम्युनिस्ट लोग भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मूल सिद्धांतों के खिलाफ मान रहे हैं।

इसके अलावा सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का संशोधनवादी नेतृत्व व उसके कुछ समर्थक इस तरह की राय भी व्यक्त कर रहे हैं कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को खत्मकर अपना नेतृत्व व निरंकुश आधिपत्य कायम करने के लिए ही माओ त्से-तुंग के नेतृत्व में यह सांस्कृतिक क्रांति संचालित हो रही है। इसके साथ-साथ रेडगार्डों द्वारा की गयी ज्यादतियों आदि के बारे में भी सोवियत संशोधनवादियों तथा बुर्जुआ प्रेस के जरिये तरह-तरह से दुष्प्रचार किया जा रहा है। फलस्वरूप इसे लेकर कम्युनिस्टों में अनेकों भ्रांतियां पैदा हो गयी हैं। फिर, लिउ शाओ-ची तथा माओ त्से-तुंग के बीच नेतृत्व व सत्ता पर कब्जा करने के लिए संघर्ष चल रहा है, यह कहकर पूंजीवादी देशों में जो प्रचार अभियान चल रहा है तथा चीन में माओ त्से-तुंग को लेकर व्यक्ति-पूजा (गुरुवाद) हो रही है—जैसे चिंतनों से भी बहुतेरे कम्युनिस्ट कार्यकर्ता प्रभावित हो रहे हैं। बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं में चाहे जो भी प्रचार किया जा रहा हो, कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं को यह याद रखना होगा कि इतने सहज व सरलीकृत ढंग से विचार कर चीन की सांस्कृतिक क्रांति व उसके असल तात्पर्य को नहीं समझा जा सकेगा। मैं मानता हूं कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही इस सांस्कृतिक क्रांति का एक वैज्ञानिक आधार है और चीन जिस तरह से इसे संचालित कर रहा है, वह सचमुच

महान (magnificent) है तथा गंभीर तात्पर्यपूर्ण है। सारी दुनिया में जहां कहीं भी कम्युनिस्ट लोग क्रांतिकारी आन्दोलन में सक्रिय रूप से संलग्न हैं, उन सबों के लिए यह सीखने का विषय है। हालांकि इसमें भी कुछ त्रुटियों अथवा कुछ-कुछ कमजोरियों का पहलू है और इस तरह के इतने बड़े एक मामले में कुछ त्रुटियां, खामियां व कमजोरियां तो रह ही सकती हैं, लेकिन उनका स्वरूप जैसा बुर्जुआ या संशोधनवादी प्रेस दिखा रही है, वैसा बिल्कुल नहीं है। सांस्कृतिक क्रांति की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि में ही इन सवालों पर विचार या आलोचना करनी होगी।

वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति–सांस्कृतिक आन्दोलन का ही एक चरम रूप है

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को क्रांति के बाद सांस्कृतिक क्षेत्र में समाज के भीतर सभी स्तरों पर जो संघर्ष संचालित करना पड़ा था, वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति केवल उसी की परिणति (culmination) यानी चरम रूप है। सांस्कृतिक क्षेत्र में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को क्रांति के पहले भी ऐसा आन्दोलन करना पड़ा था। किसी भी क्रांति से पहले सभी देशों में सभी कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए यह एक अनिवार्य कार्य है। इसे पूरा किये बिना क्रांति को सफल करना किसी भी क्रांतिकारी पार्टी के लिए संभव नहीं है। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं केन्द्रीय कमेटी के दसवें प्लेनरी अधिवेशन में कॉमरेड माओ त्से-तुंग ने कहा था–"To overthrow a political power, it is always necessary first of all to create public opinion, to do work in the ideological sphere" –अर्थात किसी राजनैतिक शक्ति को राजसत्ता से उखाड़ने से पहले जनमत तैयार करने के लिए वैचारिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्य करना निहायत ही जरूरी है। यहीं उन्होंने सांस्कृतिक क्रांति की बात कही है। यह बात न केवल क्रांतिकारी पार्टी के लिए ही सत्य है, बल्कि प्रतिक्रांतिकारी वर्ग के लिए भी उतनी ही सत्य है। जो भी जिस वक्त जनउभार को संगठित कर विरोधी शक्ति को सत्ता से हटाना चाहेंगे, उन्हें जनउभार पैदा करने के लिए अपनी वर्ग विचारधारा,

राजनीति और संस्कृति व दृष्टिकोण के आधार पर जनमत को निर्मित करने की आवश्यकता से ही वैचारिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में काम करना होगा।

क्रांति को सफल करने के लिए क्रांति से पहले सांस्कृतिक क्षेत्र में संचालित यह संघर्ष क्रांति के बाद भी क्रांति की रक्षा व उसे सुदृढ़ करने तथा उसे और आगे विकसित करने के लिए भी जरूरी है। "Fundamental question of every revolution is not only to capture power but also to consolidate it" –अर्थात सभी स्तर पर क्रांति के सामने मूल सवाल केवल राजसत्ता पर कब्जा करना ही नहीं है, बल्कि राजसत्ता पर कब्जा करने के बाद उसे सुदृढ़ करना भी क्रांति का एक आवश्यक काम है। यहां सुदृढ़ करने का तात्पर्य केवल राजनैतिक व आर्थिक पहलू तक सीमित नहीं, बल्कि इसमें सांस्कृतिक पहलू भी है। मार्क्स ने कहा था– "Cultural revolution will continue" –अर्थात उनका यही कहना था कि सांस्कृतिक क्रांति का काम चलता ही रहेगा। चीन में भी सांस्कृतिक क्षेत्र में यह आन्दोलन क्रांति के बाद भी कभी तेजी से डग भरते हुए, तो कभी धीमी गति से लगातार चल रहा था।

क्रांति के सफल होने के बाद भी, पार्टी कार्यकर्ताओं के चरित्र निर्माण, प्रचार के ढंग के बारे में एवं पार्टी व जनता में बुर्जुआ तथा सब प्रकार की प्रतिक्रांतिकारी विचारधारा और संस्कृति की घुसपैठ के खिलाफ बहुत सारे लेख चीन में प्रकाशित हुए हैं। ये सब आन्दोलन व कार्य आखिर सांस्कृतिक क्रांति के ही तो अंग हैं। लेकिन चीन में सांस्कृतिक क्रांति का जो रूप हम आज देख रहे हैं, वह सांस्कृतिक क्रांति के केवल एक विशेष स्तर को ही दर्शाता है और एक खास वक्त पर ही वह इस तरह प्रकट हुई है। सांस्कृतिक क्रांति इस तरह का रूप हमेशा धारण नहीं करती। सांस्कृतिक क्रांति धारावाहिक ढंग से चलते-चलते कभी-कभी कुछ घटनाओं को केन्द्रकर ऐसा रूप धारण करती है। हमेशा याद रखना होगा कि सांस्कृतिक क्रांति एक निरंतर प्रक्रिया है। जैसे कि चीन की सांस्कृतिक क्रांति की घटनाओं का विश्लेषण करके और अभी चीन के बारे में जहां तक खबरें मिल रही हैं, इनसे मुझे लगता है

कि निकट भविष्य में सांस्कृतिक क्रांति का यह स्तर पूरा हो जायेगा। उसके बाद फिर से एक स्थिरता आ जायेगी। तब आज की इस लहर का अहसास नहीं होगा। इसका मायने क्या है? वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति के जरिये वहां कुछ परिवर्तन हुआ है। मेरा अनुमान है कि मौजूदा दौर खत्म हो जाने के बाद ही पार्टी फिर से एक कांग्रेस बुलायेगी–वर्तमान नेतृत्व एवं दूसरी कुछ चीजों में बदलाव आयेगा। यह सब वे करने जा रहे हैं। लेकिन इसके बाद भी सांस्कृतिक क्रांति के जो औजार रह जायेंगे, वे काम करते रहेंगे। सांस्कृतिक आन्दोलन तब भी चलता रहेगा, लेकिन उसका यह वर्तमान विशेष रूप नहीं रहेगा।

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के मौजूदा दौर में ही चीन ने सांस्कृतिक क्रांति क्यों शुरू की

अब, चीन की सांस्कृतिक क्रांति के बारे में जो सब सवाल आये हैं, उन पर चर्चा करने से पहले एक चीज समझना जरूरी है। वह है, चीन ने अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय परिस्थिति के ठीक इस समय इस तरह की एक सांस्कृतिक क्रांति के रास्ते पर पूरे देश को क्यों उतार दिया? मानो कुछ हद तक जानबूझकर उन्होंने खतरे को मोल लिया है–जो कोई मामूली स्तर का खतरा नहीं है; बल्कि बहुत ही जानलेवा है जो अनेकों संकट पैदा कर सकता है और इस तरह का काम वे किस समय कर रहे हैं? जब, सच कहा जाये तो अमेरिकी जंगखोरों के हमले की धमकियों के सामने चीन अकेला है एवं ऐसी संभावना को भी हम खारिज नहीं कर सकते कि यदि सचमुच ही वैसी घटना घटे, तो शायद समाजवादी खेमे की कोई मदद भी चीन को नहीं मिल पायेगी। दूसरी ओर चीन की अपनी आर्थिक विकास की समस्या तथा उत्पादन वृद्धि की समस्या भी आज जबरदस्त है। ऐसे समय में चीन सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता को यदि महसूस कर रहा था, तो उसे कार्यान्वित करने के लिए वह वैसा एक भी कार्यक्रम ले सकता था, जैसा कि अनेक लोगों का कहना था। अर्थात पहले पार्टी के अंदर सांगठनिक तौर पर तय करके पार्टी ने एक निर्णय लिया होता, पार्टी के अंदरूनी संघर्ष (inner party struggle)

की नीति के अनुसार पहले अपने बीच के मतभेदों को हल कर लिया होता, इसके बाद एक फैसले पर, पार्टी के एक वक्तव्य पर पूरे जनसाधारण को प्रेरित किया होता। इस तरह उन्होंने प्रचलित प्रथा से विरोधों को हल करने की कोशिश न कर, इसके विपरीत देश के हर तबके की जनता को, यहां तक कि सेना तक को शामिल कर एक संग्राम शुरू कर दिया। इसमें आलोचना-प्रति आलोचना का एक खुला परिवेश उन्होंने तैयार किया—जो अवश्यम्भावी रूप से भारी दिक्कतों और खतरों को उत्पन्न कर सकता है, जो उन्हें अच्छी तरह मालूम था। उन्होंने इसे सोच-समझकर ही शुरू किया—यह जानते हुए भी कि इससे देश में भारी पैमाने पर गड़बड़ी पैदा हो सकती है। यह पद्धति सही है या गलत, उस पर चर्चा करने से पहले—इतना बड़ा खतरा मोल लेने को वे इस समय क्यों मजबूर हुए, इस पर मैं जैसा महसूस करता हूं तथा समझता हूं, आपके सामने अपनी बात रखूंगा।

सम्पूर्ण प्रतिक्रियावादी विचारधारा तथा अवसरवाद को जड़ से उखाड़ फेंकना

पहला, चीन में सामंतवाद-साम्राज्यवाद विरोधी जनता की जनवादी क्रांति (People's Democratic Revolution) सफल हुई है। इस जनता की जनवादी क्रांति की राजनीति और उसके आधार पर इस क्रांति को सफल करते समय इसकी आवश्यकता के बारे में मानसिकता तैयार करके ही यह जनता की जनवादी क्रांति सफल हुई है। इस क्रांति को सफल करने, इसे कार्यान्वित करने तथा सत्ता पर कब्जा करने के लिए वैचारिक तथा सांस्कृतिक तौर पर जितनी दूर तक सामंती व बुर्जुआ विचारों के विरोधी होना जरूरी था, उतनी दूर तक वैचारिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में इसे पूरा करके ही यह क्रांति हुई है। लेकिन, यह जनता या पार्टी कार्यकर्ताओं के सांस्कृतिक मनन को सभी तरह की कमजोरियों-खामियों से मुक्त नहीं करा सकी। पुराने समाज की नीति-नैतिकता, विचारधारा व संस्कृति के जो बीज उन्हें विरासत में मिले थे, यह उन्हें पूरी तरह नष्ट नहीं कर पायी। इससे बढ़कर, जिस वर्ग को सत्ता से उखाड़ फेंककर क्रांति सफल हुई, राजसत्ता उस वर्ग के हाथ से

चली जाने के साथ ही साथ वर्ग के तौर पर उसकी प्रतिरोध करने की क्षमता–खास तौर पर सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में खत्म नहीं हो गयी थी। इसके परिणामस्वरूप समाज के अंदर पुरानी व्यवस्था के सांस्कृतिक बीज समाज की नयी परिस्थिति में विभिन्न रूपों में चाहे कितने भी सूक्ष्म रूप में हों–सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन के हर क्षेत्र में रह गये थे और सत्ता पर कब्जा होने के बाद सापेक्ष अर्थ में स्थायित्व आ जाने के चलते पार्टी के सदस्यों और यहां तक कि नेतृत्वकारी अनेक सदस्यों में वैचारिक, राजनैतिक चेतना के निम्न स्तर के कारण पुरानी संस्कृति का प्रभाव दिन-पर-दिन बढ़ता ही जा रहा था। ज्यों-ज्यों समाज का समाजवाद में सापेक्ष अर्थ में शांतिपूर्ण ढंग से संक्रमण होता जा रहा है–बाहर से चाहे जो भी गड़बड़ी नजर आती हो, अंदर से उसका चेहरा सापेक्ष तौर पर शांतिपूर्ण ही है और जहां पार्टी सरकार का संचालन कर रही है, वहां स्वाभावत: इन सब कारकों के कारण पार्टी सदस्यों एवं जनता में व्यक्तिवादी झुकाव तथा नाना प्रकार की अवसरवादी प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं और इन सब को केन्द्रकर तरह-तरह की बुर्जुआ, पेटी बुर्जुआ व पुराने समाज के (सामंतवादी) चिंतन-विचारधारा और आचार-व्यवहार का भी पार्टी जीवन में घुसपैठ हो रहा है और यह सब समाजवाद के नाम पर क्रांतिकारी लफ्फाजी और मार्क्सवादी पांडित्यपूर्ण बातों की आड़ में ही पार्टी में घुस रहा है और क्रियाशील है। इन सब के बारे में नेतृत्व में आशंकाएं हैं। हम पूर्वाग्रह से ग्रसित न हों तो इस बात में संदेह का हमारे पास कोई जायज कारण नहीं है। यह स्वाभाविक है और ऐसा हो ही सकता है। शायद कुछ बढ़ा-चढ़ाकर या कम करके कहा जा सकता है, लेकिन ऐसा होना कोई अस्वाभाविक नहीं है। क्रांति हो गयी है, इसलिए ऐसी घटना घट नहीं सकती, क्रांति होते ही पार्टी या पार्टी कार्यकर्ता बुर्जुआ विचारों से पूरी तरह मुक्त हो चुके हैं–ये सब वे ही कह सकते हैं, जिन्हें क्रांति की जटिल द्वन्द्व-समन्वय की प्रक्रिया तथा उसकी सारी क्रिया-प्रक्रिया के बारे में कोई ज्ञान नहीं है। किसी भी देश में क्रांति होते ही ऐसा नहीं होता। क्रांति के विजयी होने के बाद भी पार्टी के अंदर तथा समाज के विभिन्न

स्तरों पर इस प्रकार के रुझान काफी समय तक रह ही जाते हैं। ये त्रुटियां-कमजोरियां वहां भी मौजूद हैं।

चिंतन व संस्कृति के निम्न स्तर को दूर करना

दूसरा, रूस के अनुभव ने यह दिखा दिया है कि आर्थिक शक्ति, सामरिक शक्ति व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में समाजवादी व्यवस्था का जबरदस्त विकास, समाजवादी कार्यकलापों के साथ चौतरफा व्यापक विकास–इन सब के साथ-साथ यदि सामग्रिक व सर्वांगीण तौर पर समाज के सांस्कृतिक मनन को अर्थात दर्शन की समझदारी से लेकर सामाजिक जीवन के समष्टिगत सांस्कृतिक स्तर व व्यक्तिगत जीवन के हर छोटे-बड़े आचरण व आदत को भी समाजवादी अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास की जरूरत के साथ तालमेल रखते हुए उन्नत न किया जाये, तो इन दोनों के बीच उत्पन्न हुई खाई के कारण चिंतन क्षेत्र के स्तर में गिरावट आना लाजिमी है। और चिंतन व संस्कृति का निम्न स्तर रहने से वह जटिल परिस्थिति की किसी भी घड़ी में उपयुक्त परिवेश मिलने पर संशोधनवाद-सुधारवाद को जन्म दे सकता है, समाजवाद को खतरे में डाल सकता है एवं प्रतिक्रांतिकारी अभ्युत्थान करा सकता है–चाहे शांतिपूर्ण ढंग से हो या सशस्त्र तरीके से, समाजवादी सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था में प्रतिक्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है। संस्कृति एवं ज्ञान का स्तर निम्न रहने से पूरी पार्टी व सम्पूर्ण मजदूर वर्ग गुमराह होकर, गलत रास्ते भटक कर समाजवाद तथा मार्क्सवाद का झण्डा फहराते हुए ही सुधारवाद व संशोधनवाद के रास्ते पूंजीवाद को पूरी तरह वापस ला सकता है।

प्रोलेतेरियन सांस्कृतिक स्तर को लगातार विकसित करते जाने का निरंतर अभ्यास

तीसरा, और एक विषय ने चीन के वर्तमान नेतृत्व को बड़ा चिंतित कर दिया है। वह है, दूसरे विश्वयुद्ध के बाद के काल में अंतर्राष्ट्रीय हालात का जबरदस्त क्रांतिकारी तात्पर्य देखने को मिला था, जब क्रांतिकारी आन्दोलनों की बाढ़ व ज्वार ने सारी दुनिया में

उफान ला दिया था तथा साम्राज्यवाद को एकदम कोने में धकेल दिया था। तब से आज तक क्रांतिकारी आन्दोलनों का पीछे की ओर पलटना यानी उल्टे आज साम्राज्यवादियों का आक्रामक रुख, पलट आक्रमण तथा प्रतिक्रांतिकारी सशस्त्र आक्रमण सर्वत्र दिखाई दे रहा है। इसके लिए सोवियत संशोधनवाद मुख्यत: जिम्मेदार है। उसका संशोधनवादी दृष्टिकोण व कार्यकलाप इसके लिए मुख्यत: जिम्मेदार हैं। यह इतना बड़ा सर्वनाश एक ऐसी पार्टी के जरिये हुआ जो लेनिन व स्तालिन जैसे महान मार्क्सवादी नेतृत्व की परम्परा का वहन करती आयी है, जिस पार्टी ने दुनिया में सर्वप्रथम समाजवादी क्रांति को सफल किया, समाजवाद का निर्माण किया, समाजवादी अर्थव्यवस्था को मजबूत नींव पर प्रतिष्ठित किया तथा जो पार्टी स्तालिन के नेतृत्व में सोच रही थी व योजना बना रही थी कि कैसे व कितनी जल्द समाजवाद की विजय को सम्पूर्ण कर साम्यवाद के प्रथम चरण में पहुंचा जाये। स्तालिन के निधन से पहले आयोजित सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 19वीं कांग्रेस में उक्त विषयों का उल्लेख है। तब लेनिन-स्तालिन की उस पार्टी में ही ऐसा एक काण्ड, अचानक ऐसा परिवर्तन पार्टी के भीतर किसी भी कारगर बाधा के बिना ही हो गया, जिससे पार्टी व राजसत्ता का नेतृत्व पूरी तरह संशोधनवादियों की गिरफ्त में चला गया। यह सब कैसे संभव हुआ? यह तो कोई एक दिन में नहीं हुआ। इस गंभीर मसले ने चीन के नेतृत्व को बुरी तरह चिंता में डाल दिया है।

फलस्वरूप उनमें यह धारणा बन गयी है कि यदि चीनी क्रांति की गारंटी को सुनिश्चित करना हो एवं उसकी बेरोकटोक अग्रगति व विकास के पथ को उन्मुक्त और अबाध रखना हो, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक के बाद एक जीत हासिल करनी हो, तो सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद के झण्डे को ऊंचा उठाये रखने के साथ-साथ देश के भीतर सर्वहारा क्रांतिकारी राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर को भी लगातार उन्नत करने के संघर्ष को जारी रखना होगा। ऐसा किये बिना क्रांति के प्रति अपने फर्ज को वे पूरा नहीं कर सकते–इस निष्कर्ष पर वे पहुंचे हैं। सोवियत संघ में सांस्कृतिक क्रांति के इस अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य की अवहेलना हुई

है। कुछ हद तक आत्मसंतुष्टि की भावना के कारण स्तालिन जैसे महान मार्क्सवादी नेता की ओर से भी इस संबंध में कुछ भूल-चूक हुई है। जिस स्तालिन ने खुद ही एक समय कहा था, "समाजवादी व्यवस्था और उसकी अर्थव्यवस्था जितनी मजबूत व पुख्ता होती जायेगी, वर्ग संघर्ष भी उतना ही तीव्र रूप धारण करता जायेगा" उन्हीं स्तालिन ने फिर सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 18वीं कांग्रेस में सोवियत समाज की ऐसी व्याख्या की, जिससे ऐसा लग सकता है कि सोवियत समाज वर्ग-विभाजित नहीं रहा, वह वर्ग-विहीन समाज है। उन्होंने कहा था, "सोवियत नागरिक एक नये किस्म के नागरिक हैं, समाजवादी नागरिक। अंदरूनी तौर पर सोवियत समाज वर्ग संघर्ष से मुक्त है। सोवियत समाज के अंदर अंतरद्वन्द्व का विराधात्मक स्वरूप अब नहीं रहा।" बात को इस ढंग से रखना निश्चित ही गलत है। कारण, वर्ग-द्वन्द्व का विरोधात्मक स्वरूप सोवियत समाज में अभी भी है, अन्यथा राजसत्ता क्यों रह गयी? स्तालिन ने इस सवाल के जवाब में केवल 'बाहरी द्वन्द्व' यानी साम्राज्यवाद का अस्तित्व तथा देश के भीतर पड़ने वाले उसके प्रभाव का ही जिक्र किया था। मेरा मत यह है कि यहां भी याद रखना होगा कि बाहरी द्वन्द्व का प्रभाव केवल तभी पड़ना संभव है, जब समाज का अंदरूनी द्वन्द्व हो, जिस पर वह प्रभाव डाल सकता है, जब उस प्रभाव डालने के अनुकूल वास्तविक परिवेश उस समाज में मौजूद हो।

फलस्वरूप, जब समाजवादी क्रांति के बाद वर्ग संघर्ष को और भी तीव्र करने की जरूरत थी, जब प्रोलेतेरियन सांस्कृतिक स्तर को और भी उन्नत करने के लिए अभ्यास की जरूरत थी, जब पार्टी के भीतर व समाज के विभिन्न स्तरों पर बुर्जुआ विचारधारा की घुसपैठ के खिलाफ प्रोलेतेरियन क्रांतिकारी चरित्र के स्तर को उन्नत करने के लिए प्रोलेतेरियन संस्कृति का निरंतर अभ्यास जारी रखना तथा इसके लिए संघर्ष की धारा को जीवंत रखना एक जरूरी फर्ज था, जब समाजवादी उत्पादन व्यवस्था के बदलते हुए स्वरूप के साथ संगति रखते हुए सांस्कृतिक स्तर और राजनीति को लगातार विकसित करने के लिए सांस्कृतिक क्रांति के झण्डे को ऊंचा उठाये

रखना जरूरी था–वह सामाजिक व्यवस्था में कुछ हद तक स्थायित्व आने पर सोवियत नेतृत्व की आत्मसंतुष्टि की मनोभावना की वजह से नहीं हो सका। इसके परिणामस्वरूप वैचारिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक स्तर में ऐसी गिरावट आयी, जिससे संशोधनवाद पनपने की उपजाऊ जमीन तैयार हुई। इतने सुंदर ढंग से विस्तारपूर्वक व्याख्या के साथ चीन की कम्युनिस्ट पार्टी कह रही है कि नहीं, यहां यह विचारणीय विषय नहीं है। लेकिन उनके वक्तव्य से मिले नाना प्रकार के संकेतों से मुझे ऐसा ही लगा। ऐसा नहीं कि ठीक इसी तरह से उन्होंने कहा है, लेकिन सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी में जो कुछ हुआ है, उनमें ऐसी ही आशंका ने काम किया है।

वैचारिक क्षेत्र में पार्टी व जनता के बीच एकता कायम करना

चौथा, चीन देख रहा है कि किसी भी वक्त उसे युद्ध का सीधा सामना करना पड़ सकता है। यद्यपि विश्वव्यापी युद्ध के खिलाफ शांति की शक्ति व उसकी प्रतिरोध क्षमता आज इतनी मजबूत है कि अमेरिका के लिए विश्वयुद्ध छेड़ना काफी मुश्किल है। शायद अंततः साम्राज्यवादी युद्ध छेड़ने में सक्षम न हों, केवल स्थानीय व आंशिक युद्ध तक ही उनके प्रयास सीमित रहें तथा आणविक युद्ध की लगातार धमकियां देते हुए कमजोर राष्ट्रों का 'ब्लैकमेल' जारी रखें। परंतु जब तक साम्राज्यवाद एक विश्व व्यवस्था के तौर पर मौजूद रहेगा, तब तक युद्ध का कारण एवं उसकी वास्तविक आशंका बनी ही रहेगी। फलस्वरूप कोई भी क्रांतिकारी पार्टी इस खतरे को गौण करके नहीं देख सकती, इसको नजरअंदाज नहीं कर सकती। समाजवादी खेमे के अन्दरूनी विरोध, फूट व तरह-तरह की भूल-भ्रांतियों की वजह से चीन के खिलाफ किसी भी दिन साम्राज्यवादी आक्रमण हो ही सकता है–खासकर जहां सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी का वर्तमान संशोधनवादी नेतृत्व विभिन्न देशों के साम्राज्यवाद-विरोधी मुक्ति आन्दोलनों तथा एशिया-अफ्रीका के नव स्वाधीनता प्राप्त देशों के बीच चीन के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए लगातार प्रयास कर रहा है और

उसके खिलाफ निरंतर निंदा अभियान में लिप्त है। इस मामले में किसी दिन इस तरह की घटना हो जाने पर चीन के अंदर उपरोक्त वैचारिक कमजोरियां पार्टी व जनता में मौजूद रह जायें, तो तमाम जनता उस आक्रमण के सामने 'एक इन्सान' के तौर पर खड़ी नहीं हो पायेगी। चीन के खिलाफ साम्राज्यवादी ताकतों के इस तरह के आक्रमण के सामने उस वक्त चीन की क्या हालत होगी, यह कहा नहीं जा सकता। उस हालत में चीन की चौतरफा घेराबंदी हो जा सकती है, पूरी दुनिया के द्वारा घेर लिया जा सकता है, यहां तक कि नव स्वतंत्रता प्राप्त आजाद बुर्जुआ देशों में से अनेकों के साम्राज्यवाद के दलाल बन जाने की स्थिति में क्या घटना घट सकती है, यह कहा नहीं जा सकता। जो सब घटनाएं एक के बाद एक इन सब नव स्वतंत्रता प्राप्त देशों में घट रही हैं, उन पर गौर करने पर इस तरह की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। भारत, जो कुछ वर्षों पहले तक चीन का मित्र था, वह आज अमेरिका की ओर रुख कर रहा है। बर्मा, जो कल तक चीन का दोस्त था, वह आज अमेरिका की ओर झुक रहा है। इंडोनेशिया ऐसा हो गया कि वह आज प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी दलालों के चंगुल में है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में क्रांतिकारी आन्दोलनों की अंततोगत्वा जीत हासिल करने की संभावना जिस तरह उज्ज्वल है, उसी तरह फिर इस खतरे को भी एकदम नकारा नहीं जा सकता। फलस्वरूप, इन हालातों में जहां अमेरिकी साम्राज्यवाद ने खुलेआम और नग्न रूप में अपनी 'कन्टेनमेंट ऑफ चायना पॉलिसी' (चीन की घेराबंदी करने की नीति) का ऐलान किया है और मौका मिलते ही जो चीन के दमन के लिए किसी भी समय अचानक आक्रमण कर सकता है, जिसकी वास्तविक संभावना भी मौजूद है—ऐसे में चीन को इस साम्राज्यवादी आक्रमण का मुकाबला करना है। चीनी क्रांति की रक्षा करनी है, तो जरूरत पड़ने पर पार्टी के नेतृत्व में देश के हर इन्सान को अंततः जान की बाजी लगाकर युद्ध लड़ना होगा। उस हालत में इस युद्ध की प्राणशक्ति होगी—पार्टी व जनसाधारण के बीच राजनैतिक व वैचारिक एकता। क्रांतिकारी चीन की अपराजेय शक्ति इसी में निहित है। इसी ताकत के बल

पर वह चैलेंज कर रहा है, "दुनिया की कोई भी ताकत चीन को ध्वस्त नहीं कर सकती। जो चीन को ध्वस्त करने आयेगा, आखिर तक वही चूर-चूर हो जायेगा।" उसकी यह शक्ति, जिसके बल पर वह इतनी बड़ी बात कह रहा है, वह है तमाम जनता तथा पार्टी के बीच एक सुदृढ़ राजनैतिक व वैचारिक एकता। अतः प्रतिक्रियावादी विचारधारा के जो अवशेष आज भी समाज के अंदर मौजूद हैं तथा नये सिरे से जिनकी घुसपैठ हो रही है, यदि इन्हें यथासंभव जल्द से जल्द निर्मूल न किया जाये, तो जो ताकतें आज उस तरह सिर नहीं उठा पा रही हैं या कहीं-कहीं सर उठाने पर भी फिलहाल वैसी कोई जबरदस्त क्षति नहीं पहुंचा पा रही हैं; केवल आर्थिक, प्रशासनिक व सांगठनिक क्षेत्र में कुछ-कुछ दिक्कतें पैदा कर रही हैं—आज ये सब ऊपरी तौर पर नगण्य और तुच्छ लग रही हैं, वे बुरे दिनों में भितरघात कर सकती हैं—यहां तक कि गृहयुद्ध तक लगा सकती हैं, देश के अंदर प्रतिक्रांति को रचाकर चीन की तमाम जनता को 'एक इन्सान' के तौर पर खड़ी होने में एक बड़ी रुकावट पैदा कर सकती हैं। यह मुद्दा भी उनके सामने सांस्कृतिक क्रांति की एक और फौरी जरूरत के तौर पर दिखाई दिया है।

सांस्कृतिक आन्दोलन का एक स्थायी संगठन तैयार करना

पांचवां, चीनी क्रांति व चीन की सामाजिक व्यवस्था भविष्य में भी नाना तरह के संशोधनवाद के जहरीले प्रभाव से मुक्त रहे, उसके लिए लगातार सांस्कृतिक आन्दोलन के संलाचन के लिए एक स्थायी संगठन का निर्माण करना जरूरी है। सभी तरह की बुर्जुआ विचारधारा की घुसपैठ के खिलाफ, जो अभी भी विभिन्न स्तर के पार्टी कार्यकर्ताओं और जनता के बीच मौजूद है एवं समाज के विभिन्न कार्यक्षेत्रों में मौजूद है, पार्टी व जनता के सम्मिलित प्रयास की मदद से उसके खिलाफ एक संघर्ष चलाना जरूरी है। इसके अलावा यह ध्यान रखना होगा कि रूसी समाज में तथा क्रांति के इतने दिनों बाद भी चीनी समाज में देश की जनसंख्या के अुनपात में मार्क्सवादी-लेनिनवादी पद्धति से सोचने-विचारने के अभ्यस्त लोगों की संख्या नितांत नगण्य है। जो मोटे तौर पर

मार्क्सवाद-लेनिनवाद कुछ-कुछ समझते भी हैं, इस तरह के लोगों में भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद का केवल सतही असर है। फिर वे सब लोग, जो मार्क्सवादी-लेनिनवादी पद्धति से सोचते-विचारते हैं और कार्य करते हैं, अर्थात पार्टी में जो-जो हैं–उनमें भी बुर्जुआ विचारधारा की भ्रांतियां एवं आधुनिक संशोधनवाद का प्रभाव दिखाई दे रहा है। नयी सामाजिक व्यवस्था का सापेक्ष स्थायित्व व अग्रगति तथा 'भौतिक लाभ' (material benefits) के आधार पर समाज की मानसिक बनावट में व्यक्तिवाद अर्थात एक नये किस्म के व्यक्तिवाद के लक्षण को चीनी नेतृत्व देख रहा है। इस व्यक्तिवाद अर्थात समाजवादी व्यवस्था में नये रूप में व्यक्तिवाद का जो रुझान दिखाई दे रहा है, उसका वास्तविक स्वरूप क्या है–वह वे पकड़ पा रहे हैं कि नहीं, यह एक अलग बात है। लेकिन ये सब मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी वैचारिक चेतना, आवेग तथा निष्ठा-लगन के विरोधी हैं–कम से कम व्यक्तिवाद की इस प्रकृति को वे पकड़ पाये हैं, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। इसीलिए इसे दूर करना भी निहायत ही जरूरी है।

मजदूरों तथा जनता में ढीलेपन के मनोभाव को दूर करना

छठा, आज चीन की क्रांति में जो लोग प्राण-केन्द्र तथा प्राण-शक्ति हैं अर्थात कम्युनिस्ट व दूसरे सभी कार्यकर्ता, जो देशभर में सेना से लेकर सांस्कृतिक क्षेत्र एवं उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में नियुक्त हैं, उनको नेतृत्व केन्द्रीय कमेटी दे रही है और उसी सामूहिक नेतृत्व का विशेषीकृत रूप माओ त्से-तुंग हैं। माओ त्से-तुंग समेत पार्टी के लगभग सभी पुराने अनुभवी नेताओं की उम्र सत्तर साल से ऊपर है। वे जानते हैं कि वे सभी कुछ वर्षों के अंतराल में गुजर जायेंगे–यह एक कठोर सत्य है और यह विषय भी चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व की चिंता का खास कारण है। क्योंकि जब तक माओ त्से-तुंग और ये सब पुराने अनुभवी व सशक्त नेता जिंदा हैं, तब तक कोई खतरा ऐसे बड़े पैमाने पर दिखाई न भी दे सकता है। लेकिन उनकी अनुपस्थिति में गंभीर खतरे की आशंका को किसी भी मायने में छोटा करके आंका नहीं जा सकता। याद

रखना होगा कि जनता हमेशा विश्वास पर निर्भर करके या नेतृत्व पर भरोसा रखकर काम करती है। मसलन, सोवियत यूनियन में यह जो ऐसा काण्ड हो गया, यह कोई अचानक ही एक दिन में तो नहीं हुआ। समाजवादी व्यवस्था में भौतिक प्रगति के साथ कदम मिलाते हुए निरंतर वैचारिक तथा सांस्कृतिक स्तर को उन्नत न कर पाने की वजह से समाज का वैचारिक व सांस्कृतिक स्तर अनुन्नत रह जाने के कारण मुख्यत: समाज के अंदर धीरे-धीरे संशोधनवाद की जमीन तैयार हुई। फिर भी देखिए, सोवियत जनसाधारण में चिंतन के क्षेत्र में यह जो इतना पिछड़ा स्तर था, इसके बावजूद स्तालिन की चिंतन-भावना तथा व्यक्तित्व के प्रभाव और उनके फौलादी अनुशासन तथा कुशल संचालन की वजह से उसकी जहरीली प्रतिक्रिया दिखाई नहीं दी थी। परिणामस्वरूप, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी तब तक विभिन्न अवसरों पर कुछ-कुछ गलतियों के बावजूद मुख्यत: मजदूर वर्ग के अगुआ दस्ते के तौर पर काम करती रही। जबकि एक शक्तिशाली व्यक्तित्व के अभाव में समूची पार्टी तथा तमाम जनता किस तरह तरह-तरह की सड़ी-गली विचारधारा एवं धारणाओं की शिकार बन गयी। अत: हम पाते हैं कि समय रहते सतर्कता नहीं बरतने से ऐसा होना कतई अस्वाभाविक नहीं है। इससे चीन के नेतृत्व को भी सबक मिला है। उनको जो चीज सबसे ज्यादा फिक्र में डाल रही है, वह है क्रांति के बाद झुण्ड के झुण्ड जो लोग कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो रहे हैं तथा जिनमें से अनेकों इस बीच पार्टी व राजसत्ता के महत्वपूर्ण जिम्मेदारी के पदों पर बैठे हैं, यदि उनकी क्रांतिकारी राजनीतिक चेतना के स्तर को उन्नत करने के साथ-साथ वैचारिक व सांस्कृतिक स्तर को काफी हद तक विकसित नहीं किया गया तथा जनता में भी प्रोलेतेरियन सांस्कृतिक आन्दोलन की एक नयी लहर पैदा नहीं की गयी, तो जब माओ त्से-तुंग सहित दूसरे कुछ अनुभवी नेता नहीं रहेंगे, तब सोवियत यूनियन की तरह चीन में भी संशोधनवाद की वापसी उसी ढंग से हो सकती है।

इसके अलावा, आज की परिस्थिति में चीन को नाना जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जैसे चीन की अंदरूनी

नाना समस्याओं के तुरंत समाधान की आवश्यकता है, बाहरी ताकतों की हरकतों से जो सारी समस्याएं पैदा हो रही हैं, उनका मुकाबला करना एवं साम्राज्यवादी ताकतों की चीन का दमन करने की नीति के खिलाफ चीन की समस्त जनता को 'एक इन्सान' की तरह खड़ा करने के लिए उपयुक्त शिक्षा देना जरूरी है। इससे भी बढ़कर है—आज सोवियत मदद तो दूर की बात रही, बल्कि सोवियत संशोधनवाद की ओर से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सभी तरह की बाधाओं के खिलाफ व नाना ओर से तरह-तरह की आर्थिक नाकाबंदी के खिलाफ देश के भीतर समाजवादी पुनर्गठन का काम सुनियोजित ढंग से सम्पन्न करना। फलस्वरूप, उसकी व्यवस्था को और भी पक्का-पुख्ता व मजबूत बनाकर उसकी द्रुत अग्रगति के लिए जनता व पार्टी के बीच राजनैतिक लाइन व विचारधारा के आधार पर एक सुदृढ़ एकता कायम करना तुरंत ही जरूरी है तथा तमाम जनता में एक क्रांतिकारी निष्ठा की मानसिकता को तैयार करना जरूरी है। अन्यथा क्रांति के बाद के दौर में समाज के भीतर सापेक्ष स्थायित्व के परिणामस्वरूप एक तरह के ढीले-ढालेपन की मानसिकता मजदूरों में, जनता के विभिन्न तबकों में पैदा हो सकती है और ऐसी हालत में चीन की अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास कर पाना संभव नहीं हो पायेगा।

क्रांतिकारी आन्दोलन के हित में विकसित आर्थिक और सैन्य शक्ति हासिल करना

सातवां, आज चीन अपने को अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रांति के मूल प्राण केन्द्र के रूप में सोच रहा है। इसीलिए ऊंचे दर्जे के सामग्रिक, यानी राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आधार पर 'एक आदमी' की तरह उसका खड़ा होना और उसकी लगातार शक्ति वृद्धि जिस तरह आणविक युद्ध के खिलाफ शांति के पक्ष में एक गारंटी है, उसी तरह दुनिया के देश-देश में तमाम क्रांतिकारी आन्दोलनों को सक्रिय सहायता और मजबूती प्रदान करने के लिए भी आज निहायत जरूरी है। इसलिए सिर्फ उसकी अपनी अंदरूनी जरूरत से, उसकी अपनी अर्थव्यवस्था

की जरूरत से और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही यह इतनी बड़ी सांस्कृतिक क्रांति नहीं दिखाई दी है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जिन साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलनों को वह आज मदद पहुंचाना चाह रहा है, उनकी जरूरत पूरी करने के लिए भी चीन को अति शीघ्र एक विकसित आर्थिक बुनियादी ढांचा कायम करना एवं सैन्य शक्ति हासिल करना निहायत जरूरी है। इस मामले में चीन को जितनी जल्द हो सके, लगभग सोवियत यूनियन के स्तर पर पहुंचने की जरूरत है, क्योंकि सुनने में चाहे यह अजीब लगे, पर यह सच है कि संशोधनवादी सोवियत नेतृत्व की भूमिका की वजह से ही आज आर्थिक और सैन्य क्षेत्रों में सोवियत की श्रेष्ठता इस मामले में काफी नुकसान कर रही है। चीन और सोवियत यूनियन के बीच आर्थिक शक्ति की जो खाई है, उसे यदि पाट दिया जा सके, तो अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन की इस दुर्दशा से पार पाना काफी आसान होगा और दूसरे-दूसरे देशों को, खासकर साम्राज्यवाद-विरोधी ताकतों और समाजवादी खेमे की नेतृत्वकारी शक्तियों को विश्वव्यापी साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन में लामबंद करना उसके लिए मुमकिन होगा, क्योंकि आर्थिक पहलू से अपने तुलनात्मक रूप से पिछड़ेपन के कारण चीन के लिए आज भी यह संभव नहीं है कि गुट निरपेक्ष देशों को दी जा रही सोवियत यूनियन की हर तरह की सहायता को पीछे छोड़कर, इन सभी देशों को आर्थिक सहायता देकर इन्हें कारगर ढंग से साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन में खींच लाये। सोवियत संघ की आर्थिक सहायता पर पिछड़े हुए देश काफी हद तक निर्भर हैं और इसी वजह से संशोधनवादी सोवियत नेतृत्व का प्रभाव उन पर आज भी मौजूद है। चीन यदि उसके अनुरूप आर्थिक और सैन्य शक्ति जल्दी से हासिल कर सके, तो जिन सब देशों की साम्राज्यवाद-विरोधी संग्राम में असली भूमिका है, उन सब पर प्रभाव विस्तार कर सकता है और संशोधनवादी सोवियत नेतृत्व के प्रभाव से उन्हें मुक्त कर दुनियाभर में साम्राज्यवाद-विरोधी संग्राम में सीधे-सीधे खींच ला सकता है।

सेना में प्रोलेतेरियन राजनीति का अभ्यास निरंतर जारी रखना

आठवां, चीन की सेना के एक हिस्से में साम्राज्यवादी देशों की आधुनिक सेना के साथ बराबरी पर आने के इरादे से तेजी से अस्त्र-शस्त्रों के यंत्रीकरण तथा फौज के आधुनिकीकरण का रुझान जबरदस्त ढंग से बढ़ रहा था। इसके नतीजतन प्रोलेतेरियन राजनीति के अभ्यास के जरिये फौज की राजनैतिक व सांस्कृतिक चेतना के स्तर को निरंतर उन्नत करने की आवश्यकता को उन्होंने लगभग गौण ही कर दिया था। इसने भी चीन के नेतृत्व को गंभीर चिंता में डाल दिया था। साम्राज्यवादी मुल्कों की युद्ध धमकियों के सामने चीन की सांस्कृतिक क्रांति का नेतृत्व अस्त्र-शस्त्रों का तेजी से आधुनिकीकरण व जबरदस्त विकास की आवश्यकता को जरा भी कम करके नहीं आंक रहा है, बल्कि उनके प्रयासों और इस विशेष क्षेत्र में इतने कम समय में चीन की विस्मयकारी प्रगति ने दुनिया की ताकतों को अचंभे में डाल दिया है। लेकिन अस्त्र-शस्त्रों की चाहे कितनी भी तरक्की क्यों न हुई हो, यदि प्रोलेतेरियन राजनीति तथा क्रांति की प्रेरणा से समाजवादी देश की फौज प्रेरित न हो, तो बुर्जुआ देशों की भाड़े की फौज के साथ उसकी चारित्रिक भिन्नता आखिरकार नहीं रहेगी। कारण, केवल क्रांति की प्रेरणा व प्रोलेतेरियन राजनीति व संस्कृति के अभ्यास के जरिये ही समाजवादी देश की फौज अमोघ शक्ति की अधिकारी बन सकती है—जिस शक्ति का मुकाबला करना किसी भी पूंजीवादी देश की आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित फौज के बस की बात नहीं है। अतः यदि फौज में प्रोलेतेरियन क्रांतिकारी राजनीति के अभ्यास की जगह अस्त्र-शस्त्रों के तकनीकी विकास की ओर ही अधिकाधिक झुकाव बढ़ता रहे, तो क्रांति की जरूरत से फौज में जो निष्ठा की मानसिकता थी, उसके नष्ट होने की संभावना दिखाई देगी एवं जिसके लक्षण हाल में कुछ-कुछ प्रतिफलित हो रहे थे। फलस्वरूप, जनता के साथ फौज को भी शामिल करते हुए इस खतरनाक रुझान और मानसिकता से फौज

को मुक्त करना भी इस सांस्कृतिक क्रांति का और एक मुख्य उद्देश्य है।

बुद्धिजीवियों और क्षमतावान व्यक्तियों के वैचारिक स्तर को समाजवादी क्रांति के साथ संगतिपूर्ण करना

नौवां, वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों व टेकनोक्रेटों को–जो तरह-तरह से सामाजिक विकास में मदद कर रहे हैं–जिनका सामाजिक विकास के क्षेत्र में सचमुच योगदान है, उनमें से किसी को भी इस सांस्कृतिक क्रांति के दायरे से अलग नहीं रखा जा रहा है। कारण, समाज में उनका जो विशिष्ट स्थान है, उसकी वजह से तथा उनके कामों की मार्फत समाज के सभी स्तर के लोगों पर उनका जो प्रभाव पड़ता है, उसकी वजह से वे बड़ी आसानी से जनता के सामने 'हीरो' बन जाते हैं। समाज के ऊपर वैज्ञानिक समुदाय व दूसरे-दूसरे बुद्धिजीवियों का प्रभाव असाधारण होता है। इसीलिए उनको भी संस्कृतिगत तथा दुनिया के बारे में अपने नजरिये में बदलाव लाने की जरूरत है। उनका सोच-विचार और वैचारिक स्तर समाजवादी क्रांति की इस जरूरत, इसकी प्रगति व उन्नति के साथ संगतिपूर्ण होना भी निहायत ही जरूरी है। चीन की सामाजिक व्यवस्था में पार्टी एवं सरकारी पदों पर बैठे व्यक्ति, जो आर्थिक–प्रशासनिक क्षेत्र में तरह-तरह की जिम्मेदारियों का निर्वाह कर रहे हैं, उनका वैचारिक स्तर जैसा प्रतिफलित हो रहा है–वह इसके लिए काफी नहीं है, संगतिपूर्ण नहीं है। अतः इन सब विसंगतियों व अपर्याप्तताओं को दूर करने की आवश्यकता है। इन्हें संघर्ष के माध्यम से दूर करने की जरूरत है। इसलिए उपरोक्त इन सब कारणों से ही सांस्कृतिक क्रांति जरूरी है। सांस्कृतिक क्रांति का यह संघर्ष पार्टी के अंदर, शासन व्यवस्था के अंदर, शासन प्रणाली के स्वरूप में, कार्यप्रणाली में, शिक्षा पद्धति में, यहां तक कि ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में भी सर्वत्र ही व्यक्तिगत तौर पर तथा सामूहिक तौर पर सभी प्रकार की प्रतिक्रियावादी सोच-विचार को धो-पोंछकर साफ कर देने का संघर्ष है।

वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति दुनिया के सभी कम्युनिस्टों के लिए सीखने का विषय

पुरानी पद्धति जो इतने दिनों से चली आ रही थी–वह थी, पहले पार्टी के अंदर संघर्ष शुरू करना, उसके अनुसार पार्टी कमेटियों में फैसला लेना और उसी फैसले से सारी जनता को शिक्षित और प्रेरित करना। यही है पुरानी पद्धति। इस सिलसिले में मैं कहूंगा कि माओ त्से-तुंग ने एक शानदार (magnificent), लाजवाब (brilliant) सांगठनिक साहस का परिचय दिया है। सारी दुनिया के कम्युनिस्टों को इससे शिक्षा लेने के लिए बहुत कुछ है। रूस में भी वैचारिक संघर्ष हुआ था। लेकिन यह पार्टी के भीतर ही चलाया गया था। उससे जनसाधारण के मन में तरह-तरह की आशंका और संदेह का मनोभाव रह ही जाता है, उनको छुआ तक नहीं जाता है। वे साफ और सुस्पष्ट धारणा के आधार पर 'एक इन्सान' की तरह पार्टी के पीछे खड़े नहीं हो पाते। कभी-कभी शायद खड़े होते भी हैं, लेकिन वह नेतृत्व के प्रभाव से या जबरदस्ती के बल पर या गलत धारणा से संचालित होकर या अनजाने में किसी अंध आवेग के वशवर्ती होकर। पार्टी के अंदर क्या हो रहा–इस संबंध में यदि जनता के मन में आशंका व संदेह रहे, तो बुरे वक्त में इसे केन्द्रकर प्रतिक्रियावादी व पार्टी-विरोधी ताकतें जनता की एकता में दरार पैदा करने की कोशिश करती हैं और उससे विपत्ति में पड़ जाने की काफी संभावनाएं रहती हैं। अत: बुरे वक्त में ये सब चीजें रक्षा नहीं कर सकतीं। इसलिए बुरे वक्त में क्रांति की रक्षा केवल तभी हो सकती है, जब कम से कम न्यूनतम कुछ क्षेत्रों में राजनैतिक व वैचारिक स्तर पर जनता के साथ पार्टी की एक मजबूत एकता गठित हो। अत: पार्टी की मूल नीतियों के पक्ष में जनता को सक्रिय करने, पार्टी के नेतृत्व में जनसाधारण को एकताबद्ध करके काम करवाने के लिए जनता की चेतना को उस स्तर पर ले जाना जरूरी है। यदि यह काम करना है, तो जनता को लगातार सांस्कृतिक आन्दोलन में शामिल करवाना होगा, जनता को खुले वाद-विवाद में भाग लेने देना होगा। हालांकि इसमें जबरदस्त खतरे

की आशंका है। लेकिन खतरे को मोल लेने की हिम्मत केवल एक ताकतवर कम्युनिस्ट पार्टी ही कर सकती है, जो पार्टी सत्तारूढ़ है, सत्ता का संचालन कर रही है, सेना को कन्ट्रोल कर रही है, कायदे-कानून पर नियंत्रण रखती है और यहां तक कि जनता के सभी स्तर के कार्यक्षेत्रों के बीच जिसका संगठन जाल की तरह फैला हुआ है। केवल इस ढंग की ताकतवर पार्टी ही इस तरह की बड़े पैमाने की कार्रवाई का बीड़ा उठा सकती है और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने ऐसा ही बीड़ा उठाया है। लेकिन इस काम में जबरदस्त खतरा रहते हुए भी वे भयभीत नहीं हुए। जनता को पार्टी के नेताओं तथा जिम्मेदारी के विभिन्न कार्यकारी पदों पर बैठे लोगों की खुली आलोचना करने का अधिकार दिया गया है। इसे देने से सम्भावित मुसीबतों तथा खतरों को झेलने का बीड़ा जो पार्टी उठा सकती है, वह कोई ऐसी-वैसी पार्टी नहीं हो सकती। इसमें खतरा हो सकता है, यह जानते हुए भी उन्होंने यह जोखिम उठाया। जिस जनता को जगाया गया, जिसे खुली चर्चा व आलोचना करने का हक दिया गया, वही जनता क्रोधवश उत्तेजना में उन्हीं नेताओं के खिलाफ उल्टा-सीधा काम कर सकती है, जिन्होंने उसे जगाया था। इसीलिए हर तरह के एहतियाती कदम उठाये गये हैं। इसके अलावा जनता को आन्दोलन में शामिल कराकर सांस्कृतिक क्रांति करने में कुछ ज्यादती तो हो जा सकती है, यह सब कुछ भी ध्यान में रखा गया है। लेकिन ज्यादती हो रही है या हो सकती है—इस बहाने किसी भी तरह आन्दोलन की धार को भोथरा करना या आन्दोलन के मूल उद्देश्य व मूल लक्ष्य के बारे में जनता को निरुत्साहित करना किसी तरह भी नहीं चलेगा। जहां ज्यादती के कारण आपराधिक क्रियाकलाप होंगे, वहां कानून उन्हें सजा देगा—इस बात की केन्द्रीय कमेटी के प्रस्ताव में साफ तौर पर घोषणा की गयी है। आन्दोलन में शामिल जो लोग सम्पत्ति व मकानों को जलाएंगे, लूटपाट करेंगे, हत्या करेंगे या इस तरह के आपराधिक काम करेंगे—कानून उन्हें सजा देगा। किन्तु इन संभावित घटनाओं का बहाना करके मूल सांस्कृतिक आन्दोलन को बंद नहीं करने दिया जायेगा।

नेताओं को भी जनता की आलोचना का सामना करना होगा

यह आन्दोलन जब शुरू हुआ, तब पार्टी के नेतागण, यहां तक कि जो नेता सही रास्ते पर चल रहे हैं, वे भी जनता की गैर-जिम्मेदाराना आलोचना के सामने पड़कर परेशानी महसूस कर सकते हैं। किन्तु, इससे उन्हें परेशान होने या मूल लक्ष्य से भटक जाने से काम नहीं चलेगा। इसी वजह से सांस्कृतिक क्रांति में जो आलोचना होगी, नेताओं को उससे भयभीत न होने के लिए बार-बार कहा गया है। जनता आलोचना सही ढंग से भी कर सकती है और गलत ढंग से भी। इससे केवल वे ही विचलित या भयभीत होंगे, जो सच्ची सर्वहारा विचारधारा से लैस क्रांतिकारी न हों। सच्चे क्रांतिकारी को आलोचना से डरने का कोई कारण नहीं है। जनता से छुपाने के लिए उनके पास कुछ भी नहीं है और यदि कुछ है, तो वह केवल पार्टी व क्रांति के हित के लिए ही है। व्यक्तिगत तौर पर उनके पास ऐसा कुछ नहीं हो सकता, जिसे जनता से छिपाना जरूरी हो। कई अवसरों पर कुछ गोपनीय रखना पड़ता है, जब पार्टी सोचती है कि इसे गुप्त रखना जरूरी है। यहां पार्टी समझ रही है खुलकर आलोचना होना ही ठीक है। इसलिए इसमें व्यक्तिगत रूप से महसूस करने की कोई बात नहीं है, डरने का भी कोई तर्कसंगत कारण नहीं है। जैसे कि, सांस्कृतिक क्रांति के अंदर ही एक समय एक अफवाह फैल गयी थी। यह तो सभी को मालूम है कि माओ त्से-तुंग की ही पहलकदमी से चीन की सांस्कृतिक क्रांति शुरू हुई है। इसकी सारी घोषणाएं माओ त्से-तुंग के ही चिंतन पर आधारित हैं। फिर भी एक समय कुछ लोगों ने हो सकता है वे विरोधी शक्तियां हों—यह प्रचार शुरू किया था कि माओ धनी किसान परिवार की संतान हैं, अतः माओ बुर्जुआ हैं। लेकिन माओ त्से-तुंग इससे जरा भी विचलित नहीं हुए और न ही परेशान हुए, बल्कि उन्होंने इस प्रचार को खुद ही मंजूरी दी। क्योंकि इसे दबाने से यह प्रश्न हल ही नहीं हो पाता और इसके सामने आने से इसकी गलत 'पोजिंग' (गलत ढंग से उठाने), अर्थात इस तरह का सवाल मन में उठने में कहां गलती हुई, उसे दिखाने का मौका मिल गया। इसलिए सवाल जब हल हो गया, तब इसके

बारे में एक साफ धारणा बन गयी, समझदारी साफ हो गयी। जबकि इसे दबाने से अथवा घुमा-फिराकर रखने की कोशिश करने से नतीजा जो निकलता—वह होता, परिवेश के प्रभाव से शायद मान तो लेते, लेकिन मन में किसी न किसी रूप में सवाल रह ही जाता। ऐसा होने से समझ में भी अंधता और यांत्रिकता रह ही जाती है। अत: पार्टी के प्रत्येक क्रांतिकारी कार्यकर्ता का काम होगा—प्रोलेतेरियन सांस्कृतिक क्रांति के इस आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ताओं के साथ एकजुट होकर जनता के साथ मिलजुलकर जनता में जो सब त्रुटियां हैं, उन्हें दूर करने में उसकी मदद करना तथा अपने में भी कोई त्रुटि रहने से, इसी प्रक्रिया के द्वारा जनता भी उसे दूर करने में उनकी मदद करेगी। इस ढंग से जनता को सक्रिय कर पार्टी इस आन्दोलन का संचालन करेगी और इस तरह पार्टी भी इस आन्दोलन को पार्टी के नियंत्रण में रखने में सक्षम होगी। पहले यह सोचा ही नहीं गया था कि फौज भी अभियान में आयेगी। लेकिन अंत तक 11वें प्लेनरी अधिवेशन में कहा गया है कि जरूरत पड़ने पर फौज भी हिस्सा लेगी। फौज में भी मतभेद हैं। इसके अलावा, इस आन्दोलन के उग्र संघर्षमूलक रूप ले लेने पर उसे नियंत्रित करना ही होगा। फलस्वरूप, एक ओर इस आन्दोलन को अनुशासित ढंग से संचालित करना होगा और फिर जरूरत पड़ने पर उसे नियंत्रित भी करना होगा लेकिन किसी भी हालत में जनता की हिस्सेदारी के इस स्वरूप को नष्ट नहीं होने दिया जायेगा। मूल बात यही है।

विशाल जनसमूह को शामिल करना सांस्कृतिक क्रांति की जरूरत

अब विचारणीय विषय यह है कि देश की सभी स्तर की जनता को शामिल करते हुए चीन की पार्टी इस ढंग से आगे क्यों बढ़ी? क्योंकि इसके द्वारा नेताओं से शुरू करके पार्टी कार्यकर्ताओं व हर स्तर की जनता को अर्थात सभी को कमजोरियों-खामियों से मुक्त होने का मौका मिलेगा। चीन का वर्तमान नेतृत्व सांस्कृतिक क्रांति के वर्तमान सांगठनिक ढांचे को एक स्थायी रूप देना चाह

रहा है। अत: यह जारी रहेगी। आज जिन समस्याओं के खिलाफ सांस्कृतिक क्रांति का यह आन्दोलन संचालित हो रहा है, भविष्य में जब समस्याएं नयी किस्म की होंगी, तब भविष्य के आन्दोलन के सामने विषय-वस्तु भी बदल जायेगी। लेकिन जनता को शामिल कराते हुए आन्दोलन के हथियार निर्माण करने की जो पद्धति चीन ने अपनायी है, उसे हतोत्साहित नहीं किया जायेगा। यह एक नयी चीज है।

चाहे किसी भी पद्धति से आन्दोलन चलाया जाये, जनता को इसमें शामिल कराने से हमारी राय में गलतियां होने की संभावना कम रहती है और यदि गलती न भी रहे, तो भी जनता के भाग नहीं लेने से उनमें तरह-तरह की बेबुनियाद शंकाएं रह ही जाती हैं। किसी व्यक्ति के खिलाफ सटीक तौर पर कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से ही जनता इस पर अपने ढंग से सोचती है कि शायद उस व्यक्ति को षड्यंत्र रचकर हटाया गया होगा और यदि यहां जनता की भागीदारी होती है, तो क्या स्थिति होती है—हां, यहां भी जनता सोच सकती है कि षड्यंत्र है—लेकिन यहां खुले वाद-विवाद की गुंजाइश है। एक पक्ष कहेगा षड्यंत्र है, दूसरा पक्ष कहेगा षड्यंत्र नहीं है। परिणामस्वरूप, एक वाद-विवाद चलेगा, इससे एक साफ धारणा उभरेगी। अनेकों तर्क नये सिरे से पेश किये जायेंगे। अनेकों दस्तावेज पेश किये जायेंगे। विपक्ष भी अपनी विभिन्न दलीलें पेश करेगा। इसी वजह से सांस्कृतिक क्रांति के दौरान जो कोई विरोध करेंगे, उन्हें बिना विचार किये दुश्मन मानने से मना कर दिया गया है। फिर साथ ही साथ विरोधी मात्र ही दुश्मन नहीं है, इसका फायदा उठाकर जो वाकई दुश्मन हैं, वे कहीं बचकर न निकलें—इस बारे में भी पार्टी ने सावधान कर दिया है। अतएव, कौन वाकई में दुश्मन है और कौन बुर्जुआ विचारधारा द्वारा भ्रमित होकर अथवा प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा प्रभावित होकर दुश्मन जैसा आचरण कर रहा है—लेकिन है आम आदमी—दोनों में फर्क समझना होगा तथा दुश्मन को आम लोगों से अलग-थलग करना होगा—इसी के लिए इसकी जरूरत है। फलस्वरूप, इस संघर्ष के बाद अंत में जो एकता निर्मित होगी,

वह काफी हद तक सापेक्ष तौर पर पक्की-पुख्ता साफ समझदारी के आधार पर बनी बहुमत वाली शक्ति की एकता, जनगण व पार्टी के बीच एकता होगी। अत: वर्तमान स्थिति में कम से कम यही एकमात्र गारंटी है।

अब कोई सोच सकता है कि जनता को शरीक कर इसे करने में पार्टी को दिक्कत होगी। क्या दिक्कत होगी? हां, कुछ गड़बड़ी हो सकती है। लेकिन भले ही भारी गड़बड़ी हो, पर यदि चीन को आज उसकी बाहरी और अंदरूनी समस्याओं का समाधान करना है, जनसाधारण के मन से सारी शंकाओं को दूर करना है, राजनैतिक व सांस्कृतिक चेतना के स्तर के आधार पर जनता के साथ पार्टी की एकता को कायम करना है, तो इसकी जरूरत है। अन्यथा, ऊपर से चाहे कितना ही प्रचार किया जाये, जनता की ओर से ऐसी पहलकदमी नहीं होगी। जनता खुद ही संघर्ष कर खुद ही इससे हासिल तजुर्बे से सीखने का मौका नहीं पायेगी। शायद सुनती जायेगी, मानती जायेगी, लेकिन वह अंधतापूर्वक ही होगा और यहां वाद-विवाद, संघर्ष का मौका रहने के कारण वह खुलकर बोलेगी। मन में संदेह पालते हुए उसे मन में छिपाकर नहीं रखेगी।

अत: हमने यह पाया कि पार्टी के साथ जनता की, उन्हीं के शब्दों में कहें तो पच्चानवे फीसदी लोगों की एकता, वैचारिक आधार पर एकता–वे इस सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से लाना चाहते हैं और इस एकता को कायम करना चाहते हैं; वैचारिक मतभेद को, भिन्नताओं को संघर्ष में खींचकर लाते हुए। अत: पद्धति के हिसाब से यह विज्ञान सम्मत ही लग रहा है। यहां केवल एक सवाल है–क्या इस क्रांति को सही रास्ते संचालित करना संभव होगा? या इसकी एक खतरनाक परिणति होगी? चीन की पार्टी ने बड़ी हिम्मत के साथ इस काम का बीड़ा उठाया है और चीन जिस ढंग से इस खतरे को मोल लेते हुए इस विशाल पैमाने की कार्रवाई को संचालित कर रहा है, मैं फिर से कहूंगा यह बहुत शानदार है। दुनिया में जहां भी कम्युनिस्ट संघर्षरत हैं, उन सभी के लिए यह सीखने का विषय है।

किसी-किसी क्षेत्र में भटकाव का मायने बुनियादी तौर पर विरोधी ताकत में बदल जाना नहीं है

अब, इस सांस्कृतिक क्रांति की कमजोरियों-खामियों को लेकर कुछ सवाल उठे हैं। जैसे, उनकी 'एप्रोच' यानी दृष्टिकोण में कुछ हद तक यांत्रिकता का प्रभाव है, जिसमें 'सब्जेक्टविज्म' (मनोगतवाद) का खतरा भी कुछ हद तक निहित है। शुरू से ही इस बारे में सचेत न रहने से इस संभावना को एकदम नकारा नहीं जा सकता। इस यांत्रिकता की प्रकृति कैसी है? उस पर मैं बाद में चर्चा करूंगा। लेकिन कई लोग सोच रहे हैं कि जब इस यांत्रिकता का प्रभाव मौजूद है, तो चीन की पार्टी मार्क्सवाद से भटक चुकी है। नहीं। हो सकता है और हो गया है—इन दोनों के बीच एक नोडल प्वाइंट (चरम बिन्दु) है। जैसे किसी-किसी क्षेत्र में भटकाव आने का मायने मौलिक रूप से विरोधी ताकत में रूपांरित हो जाना नहीं है। कहीं भटकाव शुरू हुआ है, इसका मायने तत्काल वह प्रतिक्रियावादी ताकत में बदल गया है—ऐसा निष्कर्ष कतई नहीं निकाला जा सकता। भटकाव होते-होते एक बिन्दु आता है, जहां पहुंचने पर वह प्रतिक्रांतिकारी बन जाता है। आम तौर पर चिंतन का निम्न स्तर व विशेषकर सर्वोच्च नेतृत्व व कार्यकर्ताओं के बीच तथा पार्टी के कार्यकर्ताओं व जनसाधारण के बीच चिंतन के स्तर का जो विशाल अंतर आज भी है, आज की यह यांत्रिक पद्धति उसी का नतीजा है। इसलिए यह यांत्रिक पद्धति आज जितनी भी है, उसे यदि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी दूर नहीं कर पायी, तब एक दिन सब्जेक्टिविज्म (मनोगतवाद) का बढ़ता हुआ प्रभाव दिक्कत पैदा कर सकता है। लेकिन भटकाव हुआ है—इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए घटनाओं से इसे स्थापित करना होगा। इसी वजह से चिंतन-पद्धति गलत है—यह मैं नहीं कहता। मैं जो कह रहा हूं, वह है, चिंतन-पद्धति ठीक रहते हुए भी चिंतन का निम्न स्तर झलक रहा है। इस पर हैरान होने की कोई बात नहीं है। लेकिन चिंतन के क्षेत्र में निम्न स्तर है, इस वजह से यदि मान लिया जाये कि सभी जगह ही ऐसा है, यह मान लेना भूल होगी। जैसे, एक ओर हम किसी-किसी क्षेत्र में चिंतन स्तर के संदर्भ में कुछ-कुछ असंगति

देख रहे हैं। फिर दूसरी ओर हम देखते हैं कि जनता में नाना प्रकार की गलतफहमी, निराधार आशंकाएं व संदेह दूर कर तमाम जनता को सामूहिक रूप में खड़ा करने के लिए उन्हें खुलेआम इस आन्दोलन में शामिल कराते हुए जिस विशाल काम को वे अंजाम दे रहे हैं, वह मार्क्सवादी आन्दोलन में आलोचना-आत्मालोचना की प्रचलित पुरानी रीति के बजाय एक जबरदस्त व नया कदम है और इसी अर्थ में 'यूनीक' (अनोखा) व मैग्नीफिशेन्ट (शानदार) है—यह मानना ही होगा।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो वैचारिक मतभेद चल रहा है, उसके संघर्ष की पद्धति क्या होनी चाहिए, उस संबंध में बहुत दिन पहले ही हमने विश्व साम्यवादी आन्दोलन के नेताओं से एक अपील (An appeal to the leaders of international communist movement) लेख में कहा था कि वैचारिक तथा मूल नीतिगत सवाल पर संघर्ष संचालित करते वक्त पार्टी कार्यकर्ताओं, जनता व मजदूर वर्ग को शामिल करते हुए ही इस संघर्ष को चलाना चाहिए। इस विषय पर मैंने 1963 के इस लेख में विस्तृत रूप से चर्चा की है। कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में इस पद्धति का वास्तव में प्रयोग सर्वप्रथम चीन की सांस्कृतिक क्रांति में हो रहा है। इतनी जल्दी इस तरह के व्यापक ढंग से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी इस पद्धति को वास्तव में प्रयोग करेगी, सच कहूं तो मुझे भी इसकी उम्मीद नहीं थी। इस सांस्कृतिक क्रांति में जहां कहीं-कहीं चिंतन के स्तर की अपर्याप्तताएं हैं—जिनके विषय में मैं बाद में चर्चा करूंगा, वहीं इसमें अनेकों उन्नत एवं सुंदर पहलू भी हैं, जो सभी कम्युनिस्टों के लिए सीखने का विषय है। अनेक अद्‌भुत सृजनशील विषय हैं। दोनों ही साथ-साथ हैं। हम लोग केवल अपर्याप्तता के पहलू को ही गौर करेंगे और इसको 'सबजेक्टिव' कहकर सभी दोष उनके मत्थे मढ़ देंगे—यह नहीं हो सकता।

आलोचना का दृष्टिकोण सही होना चाहिए

लेकिन मैं देख रहा हूं कि जो इस तरह की आलोचना करते हैं, उनके आलोचना करने के ढंग में एक तरह की बहादुरी की

मानसिकता झलक रही है। सांस्कृतिक क्रांति के बारे में हर कम्युनिस्ट को ही बोलने का अधिकार है और उन्हें बोलना भी चाहिए। कारण, यह कम्युनिस्ट आन्दोलन की अग्रगति तथा विकास के मौलिक सवाल के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए इसके भीतर कहीं कोई त्रुटि हो, तो वह भी दिखा देना चाहिए–अगर कहीं उससे भी उन्नत किसी सिद्धांत की कोई जानकारी दे सके, तो वह भी देना चाहिए। लेकिन कोई ऐसा कर पाया है, इस वजह से वह सारे मामलों में उनसे महान है और वे खुद कुछ नहीं हैं–यह मानसिकता ठीक नहीं है। वे अनेकों मामलों में हम लोगों की तुलना में बड़े हैं, उस क्षेत्र में शायद हम उनके मुकाबले कुछ भी नहीं हैं। फिर किसी-किसी संदर्भ में हम लोग शायद ऐसा कुछ कह सकते हैं, ऐसा तत्व-सिद्धांत दे सकते हैं, जो उनसे उन्नततर है और उनके भी काम आयेगा। अतः बड़े हैं इसलिए जो कुछ वे कह रहे हैं, उसे आंख मूंदकर नहीं मान लेंगे–ऐसी बात नहीं है। उसी तरह हम कुछ नयी उपयोगी बातें कह रहे हैं, इस वजह से उनके जो भी 'मैग्नीफिशेंट' शानदार और आशातीत सुन्दर काम हैं–उन्हें अस्वीकार करेंगे अथवा हेय दृष्टि से देखेंगे–ऐसी मानसिकता रहने पर हम कुछ भी नहीं सीख पायेंगे। ऐसी हालत में एक दिन बुर्जुआओं की तरह आत्मसंतुष्टि की यही मानसिकता चलते-चलते हम पर भी हावी हो जायेगी और जिन्हें वे शैतान बुर्जुआ पण्डितों की संज्ञा दे रहे हैं, मार्क्सवाद के नाम पर हम भी उन्हीं शैतान बुर्जुआ पंडितों की तरह ही बन जायेंगे। अतः आलोचना के कुछ विषय रहने पर भी इस संबंध में दृष्टिकोण इस ढंग का नहीं रहना चाहिए।

क्रांतिकारी मननशीलता और बुर्जुआ पांडित्यपन के बीच अंतर है

हालांकि इस चर्चा से इसका सीधा संबंध नहीं है, फिर भी प्रसंगवश, यहां मैं एक और बात रखना चाहता हूं कि किताबी पांडित्य (scholasticism) के साथ क्रांतिकारी मननशीलता का एक अंतर है। 'रिवोल्यूशनरी इंटेलेक्चुअलिज्म' और 'स्कॉलास्टिसिज्म' इन दोनों के बीच फर्क यह है कि रिवोल्यूशनरी इंटलेक्चुअलिज्म उद्देश्यपूर्ण, सृजनशील, क्रियाशील व उपकारी होता है। अतः इसमें मिथ्या गर्व या

अहमबोध नहीं होता है। न तो यह बेवजह अपनी बड़ाई करता है और न ही वह बोलने की जरूरत पड़ने पर बोलने से डरता है या हिचकिचाता है। लेकिन किसी से बड़ा है–इसे जताने के लिए वह शब्दजाल नहीं बुनता और क्योंकि वह सृजन के लिए ही बोलता है, इसलिए वह निर्णायक है। वह क्रिया करता है, इसलिए उसकी शक्ति अमोघ है। वह दूसरों के उपकार के लिए बोलता है, दूसरों को हेय दिखाने के लिए नहीं। बुर्जुआ पांडित्य प्रदर्शन का यह सब उद्देश्य नहीं होता। अतः सच्चे कम्युनिस्ट जब चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की आलोचना करेंगे, तो उन्हें उपयुक्त मर्यादा देते हुए ही करेंगे। कितना बड़ा जोखिम उन्होंने उठाया है, तनिक भी विनम्रता रहने से किसी को भी यह समझने में दिक्कत नहीं होगी कि इस खतरे को एकदम बच्चों की तरह उन्होंने मोल नहीं लिया है। उसके पीछे कुछ गंभीर सैद्धांतिक आधार व अनुभव हैं।

हर व्यक्ति की चेतना जब सामाजिक चेतना के साथ एकाकार हो जायेगी, तभी नेता के रूप में व्यक्ति की ऐतिहासिक भूमिका की विलुप्ति होगी

चीन की सांस्कृतिक क्रांति के बारे में नाना आलोचनाएं विभिन्न हलकों, यहां तक कि अनेक कम्युनिस्ट हलकों में भी हो रही हैं एवं उनके बीच एक आशंका की मानसिकता परिलक्षित हो रही है। पहला, कइयों का सोचना है कि चीन में माओ त्से-तुंग को केन्द्रकर गुरुवाद का अभ्यास चल रहा है। अर्थात इस सांस्कृतिक क्रांति के सामने चीन के पूरे सामाजिक जीवन में नेता के तौर पर माओ त्से-तुंग का जो प्रशस्ति गान सर्वत्र चल रहा है–जैसे माओ त्से-तुंग सभा में आये उसकी एक फेहरिस्त, उनके सभा मंच पर आगमन पर नारों के बाद नारे गूंजते रहे–यह जो चीज चल रही है, इस सबसे स्वाभाविक तौर पर ऐसा लग सकता है। किन्तु यहां इसके साथ-साथ एक महत्वपूर्ण चीज को याद रखना होगा। यदि जनता को आन्दोलन में प्रेरित करना हो, तो आज भी जो सही मायने में उच्च स्तर के कम्युनिस्ट के दर्जे पर नहीं पहुंचे हैं–पुराने जमाने की सर्वोच्च कम्युनिस्ट का स्तर नहीं, बल्कि वर्तमान युग में सर्वोच्च कम्युनिस्ट चेतना का जो स्तर होना

चाहिए–जब तक कम्युनिस्ट चेतना के उस उच्च स्तर तक सक्रिय कार्यकर्ता तथा आम लोग नहीं पहुंच जाते, तब तक उनके लिए श्रद्धा प्रकट करने की यही पद्धति है। इसमें यांत्रिकता जरूर है, लेकिन यह वास्तव में जरूरी है। इसके बिना कहीं भी क्रांति संगठित नहीं की जा सकती। क्रांति इससे तभी मुक्त होगी, जब पूरे समाज में हर व्यक्ति की चेतना सामाजिक चेतना के स्तर तक उन्नत हो जायेगी, व्यक्ति चेतना तथा सामाजिक चेतना एकाकार हो जायेगी–जब पार्टी व व्यक्तिसत्ता अलग-अलग नहीं रहेगी, समाज व पार्टी एकाकार हो जायेंगे और जब समाज के भीतर चेतना के उच्च स्तर और निम्न स्तर के बीच मौजूद व्यापक अंतर–जो आज भी मौजूद है, उसको दूर कर पाना संभव हो जायेगा। उस दिन जनता को सामाजिक जिम्मेदारी तथा आन्दोलन के लिए प्रेरित करने के लिए नेता के तौर पर व्यक्ति की आज की भूमिका का अंत हो जायेगा। उससे पहले नहीं। यद्यपि जनता को आन्दोलन में प्रेरित करने की यह पद्धति पुरानी यांत्रिक पद्धति की परम्परा का वहन कर रही है, तथापि बुर्जुआ यांत्रिक पद्धति के साथ इसका एक अंतर भी है–इसे भी समझना जरूरी है। यह अंतर कहां है? यहां, जनता की चेतना का कम से कम एक न्यूनतम स्तर बरकरार रखने की कोशिश की जाती है अर्थात् सैद्धांतिक क्षेत्र में एक निम्नतम स्तर अपरिहार्य माना जाता है। पहला, यहां किसी को भी, यहां तक कि नेता को भी गलती से परे नहीं माना जाता। दूसरा, सारी चीजें, यहां तक कि चिंतन-भावना भी परिर्वतनशील है–स्थिति के अनुसार सब कुछ बदलता रहता है–यही धारणा जनता की चेतना के न्यूनतम स्तर की बुनियाद यहां होती है।

नेता के बारे में यांत्रिक धारणा पार्टी में गुरुवाद को जन्म देती है और चिंतन के स्तर में गिरावट लाती है

फिर, पार्टी के कार्यकर्ताओं और जनता को प्रेरित करने के लिए एक व्यक्ति को नेता के तौर पर प्रस्तुत करने की यह जो पद्धति है, इसकी जिस तरह आवश्यकता है, उसी तरह से इसे प्रयोग में लाने में सही तरीका नहीं अपनाने से खतरा भी है। सही क्रांतिकारी पार्टी जहां इसकी आवश्यकता को समझती है, वहीं वह

यह भी जानती है कि इसमें खतरा कहां है। ठीक ढंग से इसका संचालन नहीं कर पाने से यह पार्टी में यांत्रिकता ला देती है तथा गुरुवाद को जन्म दे देती है। इससे भी बड़ी बात यह है कि इस यांत्रिकता की वजह से चिंतन का स्तर अनुन्नत रह जाता है, जो समसामयिक समस्याओं का विचार-विश्लेषण करने में अनुपयोगी हो जाता है। फलस्वरूप, जिस जनता को मुक्त व आजाद करने के लिए क्रांति चाहिए तथा इसी के लिए जनता को प्रेरित किया जा रहा है, वही जनता एक और पूर्वाग्रह के मकड़जाल में फंस जायेगी। उसे मुक्त नहीं किया जा सकेगा। मसलन, स्तालिन को सामने रखकर रूस में विशाल समाजवादी कार्यकलाप को अंजाम दिया गया, सब कुछ हुआ—इससे इनकार नहीं किया जा सकता। स्तालिन के व्यक्तित्व व नेतृत्व ने देश की समस्त जनता को प्रेरित किया। फिर, उसी रास्ते पर चलते हुए सैद्धांतिक स्तर का पिछड़ापन भी आया। एक नेता को सामने रखकर सारी जनता को प्रेरित करने में जो यांत्रिकता उसके भीतर है उसको, कम्युनिस्टों व जनता का सैद्धांतिक व सांस्कृतिक स्तर अनुन्नत रह जाने की वजह से, आखिरकार दूर नहीं किया जा सका। इसलिए वही स्तालिन का रूस फिर से संशोधनवाद की ओर जा रहा है। ये दोनों ही बातें सत्य हैं।

व्यक्ति की नेतृत्वकारी भूमिका वहां भी थी, यहां भी है। चीन की क्रांति में वह पहले भी थी, आज भी है और वह तब तक मौजूद रहेगी और काम करेगी, जब तक कि पार्टी की पहलकदमी से जनता को चिंतन की एकरूपता के आधार पर प्रेरित करने की आवश्यकता बनी रहेगी। इसे किये बिना किसी भी क्रांति की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः सभी क्रांतियों में जनता से क्रिया करवाने के क्षेत्र में यह पद्धति जुड़ी हुई है। जो क्रांतिकारी पार्टी इसे नहीं करती, नेतृत्व को व्यक्ति में विशेषीकृत नहीं कर पाती, जनता की इमेजिनेशन में नेता को नहीं लाती, सभी नेताओं को जनता के बीच एक स्तर पर स्थापित करती है, उसमें क्रांति की समझदारी ही नहीं है। एक सामूहिक नेतृत्व रहता है, लेकिन इसके ऊपर भी संघर्ष की एकता के प्रतीक के तौर पर एक नेता

का आविर्भाव होता है। किसी भी देश में जब क्रांति हुई है, वहां क्रांति के संचालन और संगठन की वास्तविक जरूरत से यह उभरकर आया है। अन्यथा क्रांति को संचालित करते वक्त नेतृत्व के बीच एकता की रक्षा नहीं की जा सकती। पार्टी के अंदर भी एकता की रक्षा नहीं की जा सकती। देश की संकट की घड़ी में जनता की एकता की रक्षा नहीं की जा सकती। कारण, इससे 'सेन्स ऑफ आथोरिटी' (नेतृत्व के बारे में धारणा) ठीक तरह काम नहीं करता, 'अल्ट्रा डेमोक्रेसी' (उग्र जनवाद) का रुझान दिखाई देता है। फलस्वरूप, क्रांति या आन्दोलन को संचालित करते वक्त किसी भी मुहुर्त में पार्टी के 'तर्क के अखाड़े' में परिणत हो जाने की आशंका रहती है और उसके काम करने की सारी क्षमता नष्ट हो जाती है। अत: कोई भी क्रांतिकारी पार्टी इन्हें फिजूल की बातें नहीं मानती। लेकिन क्रांतिकारी पार्टी इस पद्धति का इस्तेमाल करने में हर वक्त सतर्क रहती है।

माओ त्से-तुंग और लिऊ शाओ-ची के बीच विरोध के बारे में

दूसरा, माओ त्से-तुंग और लिऊ शाओ-ची के बीच नेतृत्व को लेकर विरोध के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही हैं। इस बारे में भी कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं की साफ धारणा रहनी चाहिए। बुर्जुआ समाचार पत्रों के प्रचार को चाहे हम छोड़ भी दें, तब भी चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व भी यह कह रहा है कि लिऊ शाओ-ची सरीखे राष्ट्र के कुछ सर्वोच्च पदासीन नेतागण पार्टी की सर्वहारा क्रांति की राजनीति के विपरीत आचरण करने के जरिये, अपने अनजाने में ही सही, धीरे-धीरे पूंजीवाद की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। इसके अलावा दोनों विवादरत पक्षों की बातों का बारीकी से विश्लेषण करने से एक बात समझ में आती है कि पार्टी व राजसत्ता के उच्च पदासीन नेताओं में बुर्जुआ की तरह अफसरशाही तरीके से संगठन चलाने की एक आदत बनती जा रही थी। क्रांति के बाद से माओ त्से-तुंग कहते आ रहे हैं कि "हजारों फूलों को खिलने दो", लेकिन बार-बार कहने के बावजूद

पार्टी में इसे वास्तव में कार्यरूप नहीं दिया जा सका। हजारों-हजार लोग सोचें, विचार करें—यह बात तो वे कहते आ रहे हैं, इसके जरिये विभिन्न चिंतनों और मतों के बीच जो खुला द्वन्द्व दिखेगा, उस पर उन्होंने कहा था कि इससे डरने की कोई बात नहीं है। यह अंतर और द्वन्द्व न केवल अपरिहार्य है, वरन जरूरी तथा उपयोगी है। वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति के संचालन के संदर्भ में उन्होंने वही बात कही है। चीन के नेतृत्व का मानना है कि इसके जरिये सभी कामों और गतिविधियों में जनता के साथ पार्टी एक हो जा सकती है और पार्टी नेतृत्व भी एक आपसी समझदारी के आधार पर एक हो जाता है। अन्यथा, कुछ पूर्वाग्रहों के आधार पर सुविधा भोगने के लिए या दबाव में आकर एकता कायम होती है पर वह कभी भी स्थायी नहीं होती। परंतु इस पद्धति से जो एकता निर्मित होती है, वह स्थायी एकता होती है। इस बात को कहने के बावजूद यह देखा गया है कि पार्टी नेतृत्व अफसरशाही तरीके को अपना रहा है। उनके क्रियाकलापों में अराजनैतिक व्यवहार झलकता है। कुछ हद तक अफसरशाहों की तरह दफ्तरों में जाना, दफ्तर से आना, फाइलें देखना, हुक्म देना, नोटिस जारी करना, सर्कुलर देना, भाषण देना आदि—बस। क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं को हमेशा कहा जाता है कि "राजनैतिक कार्यकर्ताओं जैसा आचरण करो, कॉमरेडों को अच्छी तरह समझाकर, उन्हें इस तरह समझाकर निर्देश दें ताकि वे समझ पायें। जरूरत पड़ने पर उन्हें उदाहरण के जरिये समझा दो कि कैसे करना है—साफ ढंग से इसे दिखा दो।" लेकिन देखा गया है कि यह सब कहने के बावजूद नेताओं के काम करने के ढंग में इसकी कोई झलक नहीं मिलती है। झलक नहीं मिलती है, यह तो हम अपनी पार्टी में भी देखते हैं। पहले भी, मैंने अपनी पार्टी में नेताओं व कार्यकर्ताओं की कार्य-पद्धति की बार-बार अलोचना करते वक्त 'अफसरशाही शैली' कहने से जो बात कहनी चाही थी, संक्षेप में उसका अर्थ गतिविधि के ऐसे ही तौर-तरीके से था। रोजमर्रा के कामकाज के संचालन में चीन की पार्टी के नेताओं में इसी अफसरशाही शैली का रुझान बढ़ रहा था। इस प्रकार सरकारी अफसरशाहों की तरह जो चलते हैं, यदि उनके

नामों के पीछे मार्क्सवादी-लेनिनवादी लिखा न जाये और यदि कम्युनिस्ट पार्टी का कोई कार्ड उनकी जेब में ढूंढ़ने पर भी न मिले, तो एक आम बुर्जुआ अफसरशाह जो नियमित रूप से इसी तरह काम करता है, उससे इनका अंतर कहां है, इसे समझने का कोई उपाय नहीं रहेगा, यदि इनकी बड़ी-बड़ी लफ्फाजी न सुनें। यह जो काम-काज में क्रांतिकारी चरित्र की झलक नजर नहीं आना, नेताओं व कार्यकर्ताओं के बीच संबंध में क्रांतिकारी संबंध का परिलक्षित न होना—यह एक तरह की यांत्रिक व एक घिसी-पिटी मानसिकता चीन की पार्टी में पनप रही थी। आखिर इसका क्या कारण है? कारण है, देश का अंदरूनी संघर्ष। आमने-सामने का संघर्ष जैसा पहले था, आज वैसा नहीं है। कोई सत्ता से उखाड़ फेंक नहीं दे रहा है। पुलिस आकर गरदन पकड़कर जेल में ठूंस नहीं दे रही है। वर्ग संघर्ष का वह पुराना स्वरूप आज और नहीं रहा। वर्ग संघर्ष का स्वरूप बदल गया है; इसने और भी सूक्ष्म रूप ले लिया है, जबकि संघर्ष के बारे में वही पुरानी धारणा काम कर रही है। एक तरफ पार्टी नेता व कार्यकर्ताओं के भीतर एवं जनमानस में पुराने समाज की प्रतिक्रियावादी भावना-धारणा एवं नये परिवेश में नये कौशल से बुर्जुआ वर्ग की विचारधारा ककी घुसपैठ, दूसरी तरफ समाजवादी आर्थिक व राजनैतिक स्थायित्व के बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति स्वातंत्र्य व व्यक्ति स्वाधीनता की धारणा के एक 'प्रिविलेज' में, एक सुविधा के साधन में परिणत होने का रुझान क्रमशः बढ़ता जाता है। फलस्वरूप वर्ग संघर्ष चलाना आज और भी कठिन हो गया है। जिस क्रांति को करना पहले बहुत कठिन लगता था, आज की इस अवस्था में क्रांति ने जो रूप ले लिया है, वह पहले से और भी कठिन लग रहा है। इसे माओ त्से-तुंग के शब्दों में कहा जाये—इन पर उनका एक भाषण लेख के रूप में छपा है, वे कहते हैं "इट इज मच मोर डिफिकल्ट देन दि रिवोल्यूशन प्रीवियसली पींकिंग हैज़ डन"—अर्थात पींकिंग ने पहले जो क्रांति की है, यह उससे भी ज्यादा कठिन है। कारण, वहां संघर्ष खुल्लम-खुल्ला, सीधा-सीधा था, दुश्मन सामने था और यहां दुश्मन अनजाने में घुस जाता है, पार्टी अनजाने ही उसका शिकार

हो जाती है और इसके खिलाफ ही संघर्ष चलाना है। अपने अंदर जो गलत रुझान हैं, उन्हीं के खिलाफ संघर्ष चलाना है। दुश्मन जहां जाना-पहचाना होता है, वहां इतना खतरा नहीं होता। वहां दुश्मन को पहचानना और उसके खिलाफ सीधा संघर्ष छेड़ना इसकी तुलना में आसान होता है। लेकिन जहां दुश्मन अंदर है, अपने भीतर अनजाने में घुसा हुआ है, वहां यह और भी ज्यादा कठिन हो जाता है। चीन की पार्टी में भी काम-काज के क्षेत्र में अफसरशाही शैली तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य की धारणा का सुविधा के साधन में परिणत होने का झुकाव बढ़ रहा था। सोवियत पार्टी में तो यह रुझान इतने प्रबल रूप से बढ़ा है कि वह साफ दिखाई दे रहा है। सांस्कृतिक क्रांति के संगठकों का कहना है कि चीन की पार्टी में भी इस तरह के क्रांति-विरोधी रुझान बढ़ रहे हैं। यहां तक कि पार्टी के सर्वोच्च नेतृत्व में से अनेकों के खिलाफ उनकी यह शिकायत है। फलस्वरूप चारों ओर से इसकी आलोचना हो रही है। सर्वव्यापक चर्चा इस पर हो रही है कि किस तरह का व्यवहार होना चाहिए। सब कुछ में वे एक परिवर्तन लाना चाहते हैं। इसके परिणामस्वरूप इस देशव्यापी सांस्कृतिक क्रांति के दौर में जिन लोगों ने गलती की थी—लेकिन जो ईमानदार व समाजवाद के पक्ष में हैं—यदि वे क्रांति के साथ चलना चाहते हैं, तो उन्हें अपने को सुधारने का मौका मिलेगा। लेकिन जो यह दिखावा करेंगे कि उन्होंने गलती की है, पर वे दुश्मन नहीं हैं—संघर्ष इस ढंग से चलने से उन्हें पार्टीजनशिप (भागीदारी) की कसौटी पर कसने से उनका असली चरित्र पकड़ में आ जायेगा। यह समझ में आ जायेगा कि वे दिखावा कर रहे हैं या सचमुच में गुमराह होकर गलती कर बैठे हैं—सचमुच वे गुमराह हैं या दुश्मन। फलस्वरूप पार्टी-विरोधी या क्रांति-विरोधी ताकतों का सफाया करने की पद्धति सही होगी और विज्ञान सम्मत होगी।

इसलिए चीन के नेतृत्व ने शुरुआत से ही राजसत्ता का इस्तेमाल कर बलपूर्वक विरोधी ताकतों-तत्वों को दबाने की नीति नहीं अपनायी है। जनसाधारण को इस आन्दोलन में सम्मिलित करते हुए देशभर में स्पष्ट एकमत कायम करके ही वे लोग इसे

करना चाह रहे हैं। प्रमुख रूप से दो कारणों से इसे किया जा रहा है। पहला, इस तरह जनता को सम्मिलित करते हुए आन्दोलन संचालित करने से गलती की संभावना कम रहती है एवं जो लोग गुमराह होकर ऐसा आचरण कर रहे हैं उनके लिए भी अपने को सुधारने का एक मौका रहता है। दूसरा, इस तरह से व्यापक रूप में जनता की हिस्सेदारी तथा परस्पर-विरोधी ताकतों के बीच तीव्र संघर्ष के बाद पार्टी व जनता के बीच सर्वसम्मति से या बहुमत से निर्णय के आधार पर जब एकमत तैयार होता है, तब वह एकता पहले की तुलना में ज्यादा स्थायी रूप धारण करती है तथा अंत तक पार्टी-विरोधी नेताओं व कार्यकर्ताओं के खिलाफ चाहे कोई भी निर्णय लिया जाये, उसे लेकर जनता के मन में कोई शक-शुबहा नहीं रहता।

माओ त्से-तुंग और लिऊ शाओ-ची के बीच द्वन्द्व का स्वरूप वैचारिक है

इसी वजह से जब इस मुद्दे पर कोई शक-शुबहा नहीं रहा और यहां तक कि बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाएं भी यह कहने लगी हैं कि माओ त्से-तुंग और सांस्कृतिक क्रांति के संचालक ग्रुप ने इस बीच ही पार्टी में बहुमत व पूरी पार्टी पर नियंत्रणकारी क्षमता हासिल कर ली है, हम पाते हैं कि लिऊ शाओ-ची राष्ट्र अध्यक्ष हैं, वे अभी भी सरकारी पद पर सर्वोच्च स्थान पर आसीन हैं। 'इसलिए माओ त्से-तुंग और लिऊ शाओ-ची के बीच नेतृत्व को लेकर द्वन्द्व चल रहा है'—इस पर बुर्जुआ समाचार पत्रों में जो अटकलें लगायी जा रही हैं, यदि ऐसी बात होती, तो वे आसानी से बलपूर्वक लिऊ शाओ-ची को हटा देते। लेकिन हटाया नहीं। आखिर क्यों? कारण, पहला, यह निजी नेतृत्व की लड़ाई नहीं है और आज स्पष्ट रूप से इस विषय पर कोई संदेह नहीं रह गया है कि माओ त्से-तुंग व लिऊ शाओ-ची के बीच चल रहा यह द्वन्द्व राजनैतिक लाइन व दृष्टिकोण का द्वन्द्व है। दूसरा, चीन की पार्टी बलपूर्वक हटाने का रास्ता अख्तियार नहीं करना चाहती। इसके परिणामस्वरूप, वैचारिक द्वन्द्व-संघर्ष में परिवर्तित होकर लिऊ

शाओ-ची की फिर वापसी हो सकती है, ऐसी संभावना भी है। यदि ऐसा हुआ, तो हम फिर से देखेंगे कि लिऊ शाओ-ची का नाम सूची में सबसे ऊपर आ गया है।

सांस्कृतिक क्रांति उत्पादन को बढ़ाने में सहायता करती है

जैसे, एक समय चाओ एन लाइ के साथ माओ त्से-तुंग का सांस्कृतिक क्रांति के किसी-किसी पहलू पर एक द्वन्द्व चल रहा था और ऐसा लग रहा था कि चाओ एन लाइ औद्योगिक इलाके में सांस्कृतिक क्रांति को ले जाने के खिलाफ थे। तब इस चिंतन के खिलाफ वैचारिक क्षेत्र में एक वाद-विवाद भी चला। फिर लगातार इस वाद-विवाद के जरिये यह साफ साबित हुआ कि जो लोग (जिनमें पहले चाओ एन लाइ भी थे) इस वजह से सांस्कृतिक क्रांति को औद्योगिक क्षेत्र में ले जाने के खिलाफ थे कि कहीं उससे उत्पादन में रुकावट न पैदा हो जाये। उनमें भ्रम-भ्रांति थी उत्पादन को बढ़ाने के लिए ही तो सांस्कृतिक क्रांति है। सांस्कृतिक क्रांति उत्पादन में रुकावट नहीं डालती, बल्कि मजदूर वर्ग के अंदर से बुर्जुआ विचारधारा, ध्यान-धारणा को पूरी तरह दूर करना, लापरवाही की मानसिकता व अर्थवाद के प्रभाव से उत्पादन को पूरी तरह मुक्त करना तथा उद्योग-कारखाने के संचालन के सर्वोच्च पद पर जो लोग आसीन हैं, उनकी भी इस समय भ्रांत विचारधारा के प्रभाव से रक्षा करना सांस्कृतिक क्रांति का ही काम है। अतः सांस्कृतिक क्रांति का विरोध करना नहीं चलेगा। हमें यह मानना ही पड़ेगा कि चाओ एन लाइ, बाद में इसे अच्छी तरह समझ गये और खुद को सुधार लिया। बशर्ते कि ऐसा न मान लिया जाये, जैसा बहुतों ने मान लिया है कि डर दिखाकर बलपूर्वक उनके विचार को बदलवाया गया है। इसके अलावा अनेक लोग ऐसा भी मानते हैं कि चाउ एन लाई वर्तमान में सांस्कृतिक क्रांति के संचालन में माओ त्से-तुंग के प्रमुख सहयोद्धा की भूमिका भले ही अदा करें, माओ के बाद वे भी ख्रुश्चेव की तरह भिन्न रूप धारण कर लेंगे। क्योंकि, उनकी राय में चाऊ एन लाई का यह परिवर्तन केवल एक चालाकी और पाखण्ड मात्र है। यदि ऐसी घटना भविष्य

में घटे, तो भी इस ढंग से सोचने की पद्धति को मैं सही नहीं मानता हूं, क्योंकि विचार-विश्लेषण के क्षेत्र में इस पद्धति को अपनाने का अर्थ द्वन्द्वात्मक वस्तुवाद से हटकर बुर्जुआ अकटलबाजी की ओर जाना हो जायेगा और इस पद्धति का अनुसरण करने पर एक के बाद एक अटकल लगाने का रुझान बढ़ता ही जायेगा। अतः मेरी राय में इस तरह से विचार करना बिल्कुल गलत है। कारण, यह वस्तु या घटना निरपेक्ष सब्जेक्टिव (मनोगतवादी) व कल्पनिक है। किसी चीज पर विचारने की यह यथार्थ पद्धति नहीं हो सकती। विचार करना होगा वस्तुपरक घटना के परिप्रेक्ष्य में। चाउ एन लाई की एक क्रांतिकारी परम्परा है और वे अभी सांस्कृतिक क्रांति की कमान सम्भाले हुए हैं। एक समय बुर्जुआ अटकलबाजों की सूची में चाउ एन लाई का नाम काफी नीचे चला गया था। फिर, उन्हीं की सूची में देखा जा रहा है कि उनका नाम पुनः ऊपर आ गया है। फिर, माओ के बाद अगले दो जनों में उनका नाम है-लिन पियाओ, चाउ एन लाई। बुर्जुआ जगत में नामों के इस उतार-चढ़ाव को लेकर काफी अटकलें लगायी जा रही हैं। परंतु चीन इसे लेकर दिमाग नहीं खपा रहा है। अतः भविष्य में ऐसी घटना देखने पर भी इस पर चकित होने की कोई बात नहीं कि माओ त्से-तुंग और लिऊ शाओ-ची के बीच पूरी एकता कायम हो गयी है—जिसकी संभावना का मैंने पहले ही उल्लेख किया है। एक विरोध चल रहा है, उस विरोध को केन्द्र कर संघर्ष के संचालन के क्षेत्र में यांत्रिकता का असर चाहे कितना भी क्यों न रहे, विरोध तो वास्तव में है—यह बात किसी भी हालत में भूलनी नहीं चाहिए। इसलिए संघर्ष को वे बंद करना नहीं चाह रहे हैं। इसी वजह से सरकार तथा पार्टी की ओर से आज भी उनके खिलाफ नाम लेकर आलोचना नहीं करने दी जा रही है और इस विराट सांस्कृतिक क्रांति की लहर के बीच भी उनको सुरक्षा प्रदान की गयी है। इसीलिए मुझे लगता है कि लिऊ शाओ-ची के साथ द्वन्द्व की शुरुआत मूलतः राजनैतिक लाइन की प्रयोग-पद्धति व दृष्टिकोण को लेकर कुछ यथार्थ भ्रम-भ्रांति के चलते ही हुई है।

बुनियादी सैद्धांतिक सवालों पर विरोध न रहने से एकता कायम होने की संभावना अधिक रहती है

अब, यह भ्रम दो तरह का हो सकता है। पहला, ऐसा भी हो सकता है कि पार्टी की मूल राजनैतिक लाइन व दृष्टिकोण से संबंधित कोई भी मतभेद नहीं है, लेकिन लिऊ शाओ-ची सोच रहे हों कि माओ त्से-तुंग के नेतृत्व में मूल राजनैतिक लाइन का प्रयोग जिस ढंग से हो रहा है—वह गलत है। दूसरा, अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जिन विषयों को लेकर सोवियत संशोधनवादी दृष्टिकोण के खिलाफ संघर्ष को संचालित किया जा रहा है, उन विषयों के बारे में उनका वैचारिक मतभेद न रहते हुए भी इस संघर्ष को संचालित करने की पद्धति के बारे में माओ त्से-तुंग की एप्रोच (दृष्टिकोण) के साथ वे एकमत नहीं हो पा रहे हैं। शायद इसी वजह से उन्हें ख्रुश्चेव, आधुनिक ख्रुश्चेव कहा जा रहा है—यह कहा जा रहा है कि संशाधनवाद की ओर उनका झुकाव है। कम से कम लिऊ शाओ-ची के साथ द्वन्द्व के क्षेत्र में माओ के चिंतन से परिचालित जो सब लेख, सम्पादकीय निकल रहे हैं और पार्टी नेतृत्व जिस ढंग से पूरे विषय को 'एप्रोच' कर रहा है, उससे लगता है भ्रम मूलतः यहीं पर है। इसलिए एक संघर्ष चल रहा है। यदि लिउ शाओ-ची के साथ विरोध का स्वरूप इस तरह का हो, तो उससे डरने की कोई बात नहीं। वे अपने तर्क दे रहे हैं और इसके जबाव में माओ त्से-तुंग के नेतृत्व में पार्टी अपने तर्क पेश कर रही है। यदि यांत्रिकता का प्रभाव विरोध के मूल उद्देश्य व विषयवस्तु पर पूरी तरह हावी होने में सक्षम न हो, तो अंततः इस वाद-विवाद के जरिये स्पष्टता आ जायेगी और एकता कायम हो जायेगी।

समाजवादी व्यवस्था में नये तरह का अर्थवाद मजदूर वर्ग में नये सिरे से बुर्जुआ व्यक्ति-अधिकार के सवाल को ले आता है

लेकिन यदि वह गलतफहमी अन्य तरह की हो, तब यह खतरनाक होगी। अर्थात यदि पार्टी की मूल राजनैतिक लाइन व दृष्टिकोण तथा अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में जो वैचारिक संघर्ष चल रहा है, उसमें पार्टी के मूल वक्तव्य को लेकर ही मतभेद

दिखाई दे, तो वह बुनियादी किस्म का है। इसके अलावा यह भी लग रहा है कि समाजवादी व्यवस्था में नये तरह के अर्थवाद व भौतिक प्रोत्साहन (मैटीरियल इन्सेंटिव) की नीति को लेकर मौलिक तौर पर एक विरोध रह गया है। समाजवादी आर्थिक निर्माण के समय नये किस्म के अर्थवाद व भौतिक प्रोत्साहन एवं 'बेनीफिट' (व्यक्तिगत फायदे) की ओर मजदूरों का झुकाव बढ़ता जाता है। अर्थात साधारण स्तर के श्रमिकों की चेतना है—समाजवाद का मायने ही है और अधिक सुविधाएं-सहूलियतें प्राप्त करना। फलस्वरूप उत्पादन को बढ़ाने के क्षेत्र में किसी मजदूर की जो आकांक्षा इसके पीछे काम करती है—यह मानसिकता है, व्यक्तिगत रूप से उसे अधिक सुविधाएं-सहूलियतें प्राप्त हों। अन्यथा वह सोचता है—समाजवाद, उत्पादन वृद्धि ये सब बातें उसके लिए कोई मायने नहीं रखती हैं। समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ सुविधाएं-सहूलियतें ऐसे ही बढ़ती हैं तथा मजदूरों की हालत उन्नततर होती ही रहती है। लेकिन मजदूरों का, जनता का उत्पादन को बढ़ाने के सवाल पर मानसिक गठन तथा सोचने का ढंग ऐसा रहने से चल नहीं सकता। इससे मजदूरों में व्यक्तिगत अवसरवाद का झुकाव दिखाई देता है। अत: मजदूर वर्ग के मानसिक गठन को इस तरह तैयार करना जरूरी है तथा चिंतन पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि देश की तरक्की व विश्व क्रांति की तरक्की के हित में वे देश के उत्पादन को तेज करने के काम में अपने को पूरी तरह संमर्पित करें। क्योंकि विश्व सर्वहारा क्रांति की तरक्की के सवाल के साथ देश के बेरोकटोक विकास और तरक्की का सवाल ओत-प्रोत रूप से जुड़ा हुआ है और उपरोक्त दोनों विषयों की परस्पर तरक्की के सवाल के साथ ही व्यक्ति की भौतिक तथा भावगत तरक्की का सवाल मूलत: निर्भरशील है। मजदूर समाज का मानसिक गठन इस तरह का रहने से समाजवादी निर्माण कार्य में भाग लेते वक्त पूर्ण निष्ठा-लगन का भाव रहेगा। यह चीज रहने से काम-काज में ढीले-ढालेपन की मानसिकता नहीं रहती। अन्यथा एक ओर काम-काज के मामले में ढीला-ढालापन, घिसीपिटी मानसिकता तथा दूसरी ओर व्यक्तिगत सुविधा पाने के लिए नाजायज

व्यक्तिगत चाह बढ़ती ही रहती है। समाजवादी व्यवस्था में मजदूर वर्ग ही मूल निर्णायक शक्ति हैं–इसके बारे में पूरी तरह क्रांतिकारी चेतना न होने से बुर्जुआ अधिकार का पुराना सवाल फिर नये सिरे से दिखाई दे सकता है। नये नारों की आड़ में वह फिर नये ढंग से आता है। स्वाधीनता बोध व व्यक्ति स्वातंत्र्य की धारणा व्यक्तिगत सुविधा में परिवर्तित हो जाती है।

भौतिक प्रोत्साहन देने की संशोधनवादी नीति समाजवाद को खतरे में डाल देगी

समाजवाद के बारे में सतही धारणा और आधुनिक संशोधनवाद के प्रभाव के कारण समाजवादियों का एक तबका सोचता है कि किसी भी तरह से उत्पादन बढ़ाना ही समाजवादी व्यवस्था का मूल लक्ष्य है। समाजवादी व्यवस्था में अंतर्निहित द्वन्द्व और समाजवादी अर्थव्यवस्था के मूल नियम की कोई परवाह किये बगैर ये सब तथाकथित मार्क्सवादी उत्पादन वृद्धि के लिए जरूरत पड़ने पर पूंजीवादी समाज की भौतिक प्रोत्साहन की नीति तक का भी इस्तेमाल करने के पक्षधर हैं। इसके नतीजतन तात्कालिक तौर पर आनुपातिक मात्रा में उत्पादन की वृद्धि होने पर भी वह चंद दिनों में समाजवादी अर्थव्यवस्था व समाजवाद को खतरे में डाल देता है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन व्यवस्था के सभी स्तरों पर पूंजीवादी सट्टेबाजी का रुझान बढ़ता जाता है। यह उत्पादन व्यवस्था में अराजकता ला देता है। चूंकि समाजवाद का उद्देश्य आखिरकार उत्पादन में बहुतायत को जन्म देना है, इसलिए, उनकी राय में मजदूर वर्ग खुद के लिए ज्यादा से ज्यादा भौतिक और सांस्कृतिक लाभ-सुविधा पाने के इरादे से उत्पादन बढ़ाता है; अतः पूंजीवादी देशों की तुलना में ज्यादा लाभ, ज्यादा सुविधाएं न मिल पाने से मजदूर वर्ग के लिए समाजवादी व्यवस्था का शायद कोई मायने नहीं रह जाता। समाजवादी व्यवस्था की ऐसी अजीबो-गरीब व्याख्या की आड़ में समाज में बुर्जुआ स्वाधीनता तथा अधिकार का सवाल नये सिरे से दिखाई देता है। इससे श्रमिकों में सर्वहारा क्रांतिकारी निष्ठा भाव नहीं आता और आ भी नहीं सकता।

समाजवादी व्यवस्था में अर्थवाद सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्ति स्वार्थ के एकात्म होने के रास्ते में बाधा पैदा करता है

क्रांति के बाद मजदूरों में नये सिरे से यह जो अर्थवाद प्रकट होता है, क्रांति के पहले के अर्थवाद से इसकी खासियत कुछ अलग है। क्रांति से पहले का अर्थवाद मजदूर वर्ग को सर्वहारा क्रांतिकारी राजनीति से दूर हटाते हुए बुर्जुआ व पेटी-बुर्जुआ पार्टियों को मजदूर वर्ग और मजदूर आन्दोलन के संघर्षशील हिस्से के बीच दरार पैदा करने का मौका देता है, क्रांतिकारी विचारधारा से भटकने के हालात पैदा कर देता है, वह मजदूर वर्ग की राजनैतिक चेतना को बढ़ने एवं सर्वहारा वर्ग की राजनीति को सामने लाने नहीं देता। क्रांति के बाद के दौर में अर्थवाद विश्व सर्वहारा क्रांति के लिए क्रांतिकारी कार्यकर्ता तैयार होने के रास्ते में, समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारी के अर्थ में, खुद की स्वाधीनता के विकास व तरक्की के अर्थ में जिस पूर्ण निष्ठा-लगन और कुर्बानी के जज्बे की जरूरत होती है, उसकी चाह और जरूरत का एहसास करने के रास्ते में बाधा पैदा करता है। नेतृत्व की ओर से भयानक भूल-चूक तथा भ्रम-भ्रांति न होने से समाजवादी व्यवस्था के अंतर्निहित वस्तुपरक नियम के अनुसार अर्थव्यवस्था की प्रगति तो होगी ही, लेकिन उसकी बेरोकटोक प्रगति को जबरदस्त रूप से बढ़ाने के लिए मेहनतकश जनता के लिए जिस सांस्कृतिक व राजनैतिक प्रेरणा की आवश्यकता है, वह पैदा नहीं होगी। अतएव समाजवादी व्यवस्था में यह अर्थवाद सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्ति स्वार्थ के एकात्म होने के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा है। यह अर्थवाद समाजवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत अवसरवाद, जिसे मैंने समाजवादी व्यक्तिवाद की संज्ञा दी है, उसकी मनोवृत्ति भी बढ़ाने में मदद करता है। इसके खिलाफ भी लड़ना चीन की सांस्कृतिक क्रांति का एक प्रमुख उद्देश्य है। कारण, अर्थव्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ करने के लिए उसे किसान कम्यून से मजदूर कम्यून की ओर जाना होगा। ऐसी हालत में श्रमिकों में यह नये किस्म के व्यक्तिगत अवसरवाद का रुझान—जो औद्योगिक क्षेत्रों में व्यक्ति श्रमिक के

परिवार को आधार करके श्रमिकों में एक नये ढंग के व्यक्तिवाद की मानसिकता को तैयार करेगा–यह श्रमिक कम्यून को जन्म देने की राह का एक जबरदस्त रोड़ा होगा। अत: चीन के समाज की आर्थिक प्रगति के वर्तमान स्तर पर यह भी एक बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है।

व्यक्तिवाद का प्रभाव तीव्र होने से वैचारिक विरोध को जटिल कर देगा

औद्योगिक क्षेत्र में सांस्कृतिक क्रांति को ले जाने के विषय में शुरू में चाऊ एन लाई के मन में जो तनिक दुविधा थी, वह निस्संदेह प्रमाणित करती है कि उन पर भी, चाहे परोक्ष रूप से ही सही, इस अर्थवाद का प्रभाव कुछ हद तक था। खैर, चाऊ एन लाई को इस भ्रम का स्वरूप समझाया गया और अंत में वे समझ गये कि औद्योगिक प्रगति को निरंतर बेरोकटोक जारी रखने के लिए औद्योगिक क्षेत्र में सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता है। नाम न लेकर आलोचना करने में यही सुविधा है। यह साफ समझ में आ रहा है कि लिऊ शाओ-ची के साथ वैचारिक क्षेत्र में आज भी पूरी तरह एकता कायम नहीं हो पायी है। ऐसा हो सकता है कि आखिरकार एकता कायम नहीं हो पाये। यदि इस वैचारिक संघर्ष में अंतत: माओ त्से-तुंग की राजनैतिक लाइन की ही जीत हो जाये, तो लिऊ शाओ-ची का पतन होगा और यदि अंतत: एकता कायम हो जाये, तो बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं में नामों की जिस सूची में उतार-चढ़ाव चल रहा है, वहां उनका नाम फिर से एकदम ऊपर आ जायेगा। तब 'माओ त्से-तुंग और लिऊ शाओ-ची के बीच सत्ता-संघर्ष चल रहा है'–ऐसी अटकलें जो लोग लगा रहे हैं–वे फिर क्या कहेंगे? वे एक इतने बड़े ऐतिहासिक संग्राम में निजी नेतृत्व को लेकर झगड़े के अलावा और कुछ नहीं देख पाते हैं। इस विरोध में दोनों ही पक्षों के आचरण में यांत्रिकता प्रतिबिम्बित हो सकती है और हो भी रहा है। साधारण स्तर के कम्युनिस्टों और जनसाधारण के चिंतन का निम्न स्तर रहने की वजह से व्यक्तिवाद के प्रभाव से मुक्त होकर संघर्ष चलाने के लिए जिस स्तर की

जरूरत है, मेरे ख्याल से वह आज है नहीं। व्यक्तिवाद के बीज इसमें हैं। इसे नकारने का कोई उपाय नहीं है। फलस्वरूप, इससे माओ त्से-तुंग और लिऊ शाओ-ची, दोनों ही कुछ हद तक प्रभावित हो सकते हैं। व्यक्तिवाद व व्यक्ति-पूजा का रुझान वैचारिक संघर्ष में अनावश्यक जटिलताओं को जन्म देता है तथा व्यक्तिवाद के रुझान की तीव्रता पर वैचारिक संघर्ष का नतीजा काफी हद तक निर्भर करता है। जो आन्दोलन चल रहा है, उसके जरिये जहां एकता और भी सहजता व जल्दी से कायम हो सकती है, व्यक्तिवाद की तीव्रता से वह न केवल और देर से होगी, बल्कि अंत तक ऐसा भी हो सकता है कि बहु-आकांक्षित एकता में अंततः पूरी तरह दरार पड़ जाये। व्यक्तिवाद का प्रभाव, अहम् का प्रभाव यदि अधिक मात्रा में हो तो यह सब संभव हो सकता है। लेकिन चाहे जो भी हो, यह नेतृत्व दखल की लड़ाई कतई नहीं है—इस बात को याद रखना जरूरी है। यह द्वन्द्व है—दो अलग-अलग दृष्टिकोणों का द्वन्द्व, दो विचारधाराओं का द्वन्द्व।

शायद इस द्वन्द्व के चलते ऐसा भी हो सकता है कि सारे देश के सामने माओ त्से-तुंग के इतने बड़े 'हीरो' होने के खिलाफ किसी-किसी का व्यक्तिगत अहम् सर उठा ले। ऐसा होना बहुत ही स्वाभाविक है। जो पहले माओ त्से-तुंग को नेता मानकर बड़े बने हैं, कुछ हद तक बड़े होने के बाद उनमें भी व्यक्तिवाद के लक्षण दिखाई दे सकते हैं और वे भी सोचने लग सकते हैं कि वे भला किससे कम हैं! व्यक्ति-पूजा के खिलाफ लड़ाई की आड़ में दरअसल वे चाह रहे हैं कि अब उनका भी कुछ नाम हो। फिर, नेतृत्व के बारे में साधारण कम्युनिस्टों और जनता की यांत्रिक धारणा को सामयिक तौर पर ही सही, प्रश्रय देने में लेशमात्र भी असावधानी होने से माओ त्से-तुंग खुद भी इसके 'विक्टिम' (शिकार) हो जा सकते हैं। लेकिन यह यहां मूल विचारणीय विषय नहीं है। याद रखें कि यह सब रहने से मामला और भी जटिल हो जायेगा। जिस मामले को शायद काफी आसानी से हल किया जा सकता था, वह और अधिक पेचीदा हो जायेगा। परिणामस्वरूप हो सकता है कि अनेकों के संबंधों में दरार पड़ जाये। जैसे, अनेक

स्तरों के लोग पार्टी से निकल गये या उनकी छुट्टी कर दी गयी। वैसे ही हो सकता है कि लिऊ शाओ-ची या किसी और ग्रुप की छुट्टी कर दी जाये। पार्टी के भीतर एक और विराट 'पर्ज' होगा और यह भी देखने को मिल सकता है कि इतने बड़े पैमाने पर कार्रवाई के बाद भी बहुसंख्या को समझाने-बुझाने के जरिये और मामूली से पर्ज (निष्कासन) के जरिये पार्टी एक ऐसी जबरदस्त समस्या को बड़ी आसानी से और सफलतापूर्वक हल करने में समर्थ हो जाये। यदि ऐसा हो, जिसकी संभावना ही अधिक है, तो इसमें हैरान होने की कोई बात नहीं है। इस पद्धति के भीतर ही यह चीज दिखाई दे रही है। कारण, देशव्यापी जनता को जोड़कर जिस पद्धति से संघर्ष चलाया जा रहा है, उसी पद्धति के भीतर ही यह सम्भावना निहित है।

लेखों में अभिव्यक्ति की त्रुटियां

तीसरा, चीन की पत्र-पत्रिकाओं में जो सब लेख प्रकाशित हो रहे हैं, उनके दृष्टिकोण में भी कहीं-कहीं त्रुटियां नजर आयी हैं और इनके संबंध में आपके भी कुछ सवाल हैं। यह सही है कि उनमें अनेकों के लेखों में कुछ-कुछ त्रुटियों हैं। लेकिन यहां एक और बात को भी ध्यान में रखना होगा। वह है—जो इन लेखों को लिखते हैं, उन सभी का वैचारिक स्तर बराबर नहीं है। उनके स्तर में फर्क है, जो रहना स्वाभाविक हैं, क्योंकि श्रम विभाजन है। इसलिए ऐसी हालत में क्या होता है? एक कोई लेख लिखते हैं—पार्टी के चिंतन के आधार पर ही लिखते हैं। एक तरह से अपनी समझ के मुताबिक ही उन्होंने लेख को तैयार कर पेश किया। बाद में देखा गया, किसी दूसरे ने उस लेख की अभिव्यक्ति में कुछ मौलिक बिन्दुओं पर गलती पकड़ ली है। लेकिन तब तक वह लेख छप चुका है। ऐसे में बाहर के लोग तो कह ही सकते हैं कि पार्टी का चिंतन तो यही है। ऐसा तो होता ही है। हम लोगों के बीच भी कभी-कभार ऐसा होता है। यह मुख्यतः इस कारण से होता है कि जो लोग लिखते हैं, उन सभी में चिंतन का वह सर्वोच्च न्यूनतम स्तर नहीं है, जिसके रहने से ऐसा नहीं होता।

लेकिन यहां भी एक बात याद रखना जरूरी है। यह आवश्यक सर्वोच्च न्यूनतम स्तर रहने के बावजूद जो लिखते हैं, वे सभी तो एक स्तर के नहीं हैं। किसी का लेखन साफ 'नपा-तुला' होता है, तो कोई अन्य उसी पर यदि लिखता है, तो वह काफी लम्बा-चौड़ा और क्लिष्ट होता है। यहां प्रसंग से थोड़ा-बहुत हटकर होने पर भी आप लोगों के समझने की सुविधा के लिए मैं एक उदाहरण दे रहा हूं। जब युगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ चीन की पार्टी का मूल सैद्धांतिक सवालों पर 'पॉलेमिक्स' (वाद-विवाद) चल रहा था, तब टीटो की पार्टी के संशोधनवादी सिद्धांत व राजनैतिक विचारधारा का विरोध करते हुए चीन की पार्टी ने जिन वक्तव्यों, तर्कों तथा लेखों को पेश किया था, उनका मैं समर्थन करता हूं। लेकिन मैने ख्याल किया कि युगोस्लेविया का वक्तव्य पूरी तरह मार्क्सवाद के मूल सिद्धांत का विरोधी होते हुए भी चीन की पार्टी के आरोपों का उत्तर देते हुए उन्होंने अपने तर्कों को अपने लेखों में कितने सुंदर ढंग से पेश किया है। कार्डेल्ज, जो मेरी राय में वर्तमान युग के संशोधनवाद के जन्मदाता हैं—वैचारिक क्षेत्र में ख्रुश्चेव तो उनकी छाया मात्र हैं—इस विकृत दार्शनिक ने मार्क्सवाद को कलुषित किया है—परंतु सैद्धांतिक पहलू से वे काफी लैस हैं, इसलिए वक्तव्य प्रस्तुत करने की उनकी शैली चीन के इन सब लेखकों से काफी शक्तिशाली थी। क्योंकि कार्डेल्ज खुद लिखते थे, जबकि चीन की ओर से संभवतः पत्रिका के सम्पादकमण्डल के सदस्यों में से किसी ने लिखा होगा। सम्पादकमण्डल के सदस्यगण मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन एवं माओ त्से-तुंग की तरह सैद्धांतिक तौर पर इतने उन्नत स्तर के नहीं हैं। ऐसा हो भी नहीं सकता। यह इतना आसान नहीं है। पर उन लेखों में एक न्यूनतम स्तर अवश्य है और हमारे अंदर जो न्यूनतम स्तर है, उससे वह काफी उन्नत है—यह तो हमें तर्कसंगत ढंग से मान ही लेना चाहिए। लेकिन इसके बावजूद इस तरह के लेखों में जरा भी गलती नहीं रहेगी—ऐसा नहीं हो सकता। वक्तव्य के प्रस्तुतीकरण में काफी त्रुटि रह सकती है, हर समय नपा-तुला वैज्ञानिक दृष्टिकोण न भी रह सकता है। एक और बात भी मैं यहां

कहूंगा। लिखते वक्त तरह-तरह की झोंक काम करती है। जैसे उपहास करना, अनावश्यक विश्लेषणों का इस्तेमाल करना, कड़े शब्दों का प्रयोग करना, यहां तक कि विकृत ढंग से चरित्र-चित्रण करना आदि—ये झोंके लेखों में आ जाती हैं। यह सब झोंके आने से लिखते-लिखते एक मिजाज भी बन जाता है और इन्सान अक्सर इसका शिकार हो जाता है। हर समय उससे मुक्त नहीं रहा जा सकता। परिणामस्वरूप क्रांति के हित को सामने रखकर, अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान को सामने रखकर और जिनके खिलाफ ये लेख लिखे जाते हैं, कम से कम उनके समर्थकों की मानसिकता को भी ध्यान में रखते हुए उद्देश्य की पूर्ति के लिए जरूरत को ध्यान में रखते हुए ये लेख नहीं लिखे जाते हैं। इससे काफी नुकसान होता है और काफी हद तक हुआ भी है। उद्देश्य को पूरी तरह सामने रखते हुए कब कितना जोर देकर कहना है और कब लेखन कितना संयत रखना है और उसके अनुसार आवेग, कहने के ढंग व व्यक्तिगत, भावावेग की तीव्रता को आवश्यकता के अनुसार कितना नियंत्रित करना है, लिखते समय ऐसा लेख वे ही लिख सकते हैं, जिनकी खुद के भावावेग पर पूर्ण नियंत्रण रखने की क्षमता है। सम्पादकमण्डल के जो सदस्य लिखते हैं, वे सब ऐसे उन्नत स्तर के न होने से सब हो जायेगा—ऐसा सोचना भी ठीक नहीं है। यह और एक दूसरा पहलू है।

सांस्कृतिक क्रांति में सैद्धांतिक कमजोरी के कुछ पहलू

सांस्कृतिक क्रांति में सैद्धांतिक पहलू पर कुछ-कुछ कमजोरियां रही हैं। इसके बारे में मेरी कुछ आलोचना है—बिरादराना आलोचना—जिसको मैं आपके सामने रखूंगा। सैद्धांतिक क्षेत्र में ये कमजोरियां तथा पार्टी चिंतन व व्यवहार के क्षेत्र में जिस यांत्रिकता का प्रभाव है, निकट भविष्य में उन्हें दूर नहीं किया गया तो एक आशंका रह ही जायेगी। जैसे सभी सच्चे कम्युनिस्टों को यह मालूम है कि लगातार सुधारवाद का अभ्यास एक समाजवादी देश में पूंजीवाद फिर वापस ला सकता है। इस संबंध में चीन की पत्र-पत्रिकाओं में जो वक्तव्य आया है, उसमें जगह-जगह यह

उल्लेख किया गया है कि इस तरह का परिवर्तन, क्रमिक विकास के रास्ते भी हो सकता है। उनका कहना है कि सोवियत यूनियन में समाजवाद से पूंजीवाद की ओर पुनः वापसी 'इवोल्यूशन' (क्रमिक परिवर्तन) के रास्ते भी हो सकती है। मेरे मतानुसार इस ढंग से कहना गलत होगा। समाजवाद से पूंजीवाद की ओर पुनः वापसी भी समाज का एक आमूल परिवर्तन है। वह केवल क्रमविकास के रास्ते नहीं हो सकता। समाजवाद से जब सचमुच पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी, तो याद रखना होगा कि समाजवाद से पूंजीवाद की ओर वापस आने के बीच भी एक विच्छेद है—उस अर्थ में यह भी एक आमूल परिवर्तन है। लेकिन चूंकि 'क्रांति' शब्द का इस्तेमाल हमेशा विकास व प्रगति के अर्थ में होता है तथा खासकर सामाजिक विज्ञान में 'क्रांति' शब्द का इस्तेमाल हम प्रगति के अर्थ में ही करते हैं, इसलिए इस संदर्भ में 'क्रांति' शब्द का इस्तेमाल करना उचित नहीं है। लेकिन गुणात्मक परिवर्तन के अर्थ में निश्चय ही यह विपरीत दिशा में आकस्मिक परिवर्तन अर्थात प्रतिक्रांति है। एक 'नोडल प्वाइंट' (चरम बिन्दु) है, जो इस आकस्मिक परिवर्तन को चिह्नित करता है। सामाजिक विज्ञान में यह हर समय पकड़ में नहीं आता। चूंकि यह पकड़ में नहीं आता, इसलिए कोई परिवर्तन, जिसके कारण एक विशेष रूप दूसरे एक विशेष रूप में गुणात्मक ढंग से परिवर्तित हो जाता है, वह कभी भी केवल क्रमविकास के रास्ते नहीं होता। यह हमेशा क्रमविकास के रास्ते अंततः क्रांतिकारी या गुणात्मक परिवर्तन होता है। इस मामले में चूंकि 'क्रांति' शब्द उपयुक्त नहीं है, इसलिए वे अनायास ही इस परिवर्तन को क्रमविकास के रास्ते या प्रतिक्रांतिकारी परिवर्तन कह सकते थे। तब क्रमविकास शब्द को लेकर और कोई भ्रम नहीं पैदा होता। साफ दिख रहा है कि इस मुद्दे पर 'चिंतन की स्पष्टता' प्रकट नहीं हुई। यदि पार्टी की सर्वोच्च कमेटी द्वारा प्रकाशित दस्तावेज में इस तरह की अभिव्यक्ति नहीं होती, तो मैं आसानी से समझ लेता कि जो जो लोग लिख रहे हैं, वे लिखते वक्त शब्दों के इस्तेमाल में पर्याप्त सर्तकता नहीं बरत पाये—जिसकी वजह से ऐसा हुआ है। इस ढंग से प्रस्तुत करने के पीछे एक और भ्रम भी काम कर सकता है।

हमेशा संघर्ष के जरिये ही ऐसा परिवर्तन होगा–ऐसी कोई बात नहीं है। पार्टी नेतृत्व पर संशोधनवादियों का कब्जा हो जाने के बाद धीरे-धीरे सूक्ष्म ढंग से चुपके-चुपके मार्क्सवादी विचारधारा एवं आचरण को दूषित करते-करते समाज को ऐसी हालत में पहुंचा दे सकते हैं, जहां मार्क्सवाद-लेनिनवाद की प्राणवस्तु बाकी कुछ ही नहीं, केवल शब्दावली ही रह गयी और इस तरह समाजवाद की जगह दरअसल पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी हो। पूरा मजदूर वर्ग वैचारिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में अत्यंत निम्न स्तर की वजह से इस परिवर्तन को पकड़ नहीं पाया हो और आखिरकार प्रतिरोध नहीं कर पाया हो। यह एक दिन में नहीं होता। लेकिन लम्बे अर्से से संशोधनवाद के रास्ते पर चलने के कारण इस तरह की घटना होना असंभव नहीं है। लेकिन चूंकि यह परिवर्तन खुले संघर्ष के जरिये नहीं हुआ, इसलिए यह केवल क्रमविकास के रास्ते हुआ है–इस तरह से कहना गलत होगा। कारण, समाजवाद से पूंजीवाद की वापसी में भी क्रमविकास एवं क्रांति–इस संदर्भ में प्रतिक्रांति–इन दोनों ही प्रक्रियाओं ने काम किया, जिस प्रक्रिया को निरंतरता और विच्छेद, दोनों को मिलाकर ही समझना होगा।

नेतृत्व के बारे में आज भी यांत्रिक धारणा मौजूद है

चीन की क्रांति में महान नेता के रूप में माओ त्से-तुंग का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। क्लासिकल बुर्जुआ क्रांति या दुनिया में पूंजीवादी क्रांति के युग में भी विभिन्न देशों में क्रांति को संगठित करने में खास-खास महान नेताओं का अविर्भाव हुआ है। फिर समाजवादी क्रांति के युग में भी हमने देखा कि जहां भी मजदूर वर्ग के नेतृत्व में क्रांति सफल हुई है, वहीं इस तरह के महान नेता का अविर्भाव हुआ है। लेकिन बुर्जुआ क्रांति और समाजवादी क्रांति–इन दोनों किस्म की क्रांतियों में ही एक महान नेता की यह जो विशेष नेतृत्वकारी भूमिका ऐतिहासिक जरूरत के तौर पर दिखाई दी है, उसमें बुनियादी चारित्रिक अंतर है। इस अंतर को भी भली-भांति समझना होगा। बुर्जुआ क्रांति चूंकि उत्पादन पर व्यक्तिगत मालिकाना तथा आधिपत्य के आधार पर एक अर्थ

में व्यक्तिवाद तथा व्यक्तियों के विकास की क्रांति थी, इसलिए उस युग के मॉडल बुर्जुआ जनतांत्रिक या औपचारिक जनतांत्रिक रूप में भी नेतृत्व वास्तव में सर्वदा व्यक्ति नेतृत्व ही रह गया। फलस्वरूप, व्यक्ति नेतृत्व ने कुछ हद तक मानो बाहर से अर्थात ऊपर से समूह का संचालन किया। परंतु समाजवादी आन्दोलन में सामूहिक नेतृत्व की धारणा होती है—चूंकि समाजवादी क्रांति के युग में व्यक्ति मालिकाना, व्यक्ति-आधिपत्य और अधिकार की बजाय सामाजिक मालिकाना व मजदूर वर्ग के नेतृत्व में जनता के सामूहिक आधिपत्य को कायम करने की क्रांति होती है—इसलिए समाजवादी आन्दोलन में मजदूर वर्ग के नेतृत्व की धारणा भी सामूहिक नेतृत्व की धारणा के रूप में पैदा हुई है। इसलिए मजदूर वर्ग की पार्टी में सभी सदस्यों के सोच-विचार के द्वन्द्व-समन्वय के जरिये पार्टी का सामूहिक नेतृत्व निर्मित होता है और एक नेता के माध्यम से इस सामूहिक नेतृत्व का व्यक्तिकरण (परसोनिफिकेशन) ही इस युग के समाजवादी आन्दोलन में व्यक्ति नेतृत्व की ठोस विशेषता है। इसलिए ऐसी बात नहीं है कि पार्टी ने माओ त्से-तुंग को नेता के तौर पर पार्टी के नेताओं, कार्यकर्ताओं व जनता पर जबरन थोप दिया है। जबकि आश्चर्य की बात है कि आज भी चीन तथा दुनिया के ज्यादातर कम्युनिस्टों में जो धारणा है, वह चीन की क्रांति के नेतृत्व के इस विशेषीकृत रूप के बारे में यांत्रिकता के प्रभाव से ग्रस्त है। यह बात सही है कि जनता इस विशेषीकृत सामूहिक नेतृत्व के सैद्धांतिक पहलू को फिलहाल शायद अच्छी तरह समझ नहीं पायेगी। मौजूदा हालात में उनके कार्यकलापों में कुछ हद तक व्यक्ति नेतृत्व के प्रति मोह और यांत्रिकता का झुकाव रहेगा ही। लेकिन जिस जगह सांस्कृतिक क्रांति के सैद्धांतिक क्षेत्र में कमजोरी है, वह यह है कि जो भी नेता 'माओ त्से-तुंग विचारधारा' की रट लगा रहे हैं, वे भी ऐसा क्यों कर रहे हैं, उसकी एक सैद्धांतिक सटीक धारणा व व्याख्या न तो खुद उनमें है और न ही वे दुनिया के सामने रखने में सक्षम हुए हैं। हाल ही में माओ त्से-तुंग के नेतृत्व को लेकर जब कभी व्यक्ति-पूजा का आरोप लगा है, तब उन्हें यह जवाब देते हुए देखा गया है कि "जैसे युद्ध में सेनापति

की जरूरत होती है, वैसे ही हर संघर्ष में एक नेता की जरूरत होती है–इसमें भला गुरुवाद की क्या बात है?" लेकिन इस ढंग से कहने से वह सैद्धांतिक पहलू से पूरी तरह स्थापित नहीं होता है। सोवियत यूनियन के संशोधनवादी नेतृत्व के विरुद्ध जो छिटक कर अलग हुआ क्रांतिकारी गुट (स्प्लिंटर ग्रुप) है, उसका भी जो मूल राजनैतिक दस्तावेज पहली बार पेरिस में प्रकाशित हुआ था, उसमें यह देखने को मिला कि इस सवाल का उत्तर देते हुए वे कह रहे हैं, "हां, हमलोग माओ त्से-तुंग को मानते हैं और होज़ा को मानते हैं। इन दो सेनापतियों के अधीन हम संगठित हैं, क्योंकि लड़ाई के लिए सेनापति की आवश्यकता होती है। हम लड़ना चाहते हैं, सेनापति के बिना नहीं लड़ा जा सकता। व्यक्ति पूजा की बात या ये सब बातें बुर्जुआ की बातें हैं।"

मजदूर वर्ग के सामूहिक नेतृत्व का विशेषीकृत रूप ही व्यक्ति-नेतृत्व है

इतने सरलीकृत ढंग से समझने से जो चीज पार्टी में जन्म लेगी, वह सामूहिक नेतृत्व को कमजोर करेगी, वैचारिक आन्दोलन को कमजोर कर डालेगी। यदि समझदारी इसी स्तर पर रह जाये, तो क्रांतिकारी चेतना को लगातार बढ़ाने तथा चरित्र गठन करने के उद्देश्य से जो सांस्कृतिक क्रांति संगठित की गयी है, वह उसके फौरी कार्यक्रम के पूरे हो जाने के बाद फिर नये सिरे से दिक्कतें पैदा कर देगी। इसीलिए इस सांस्कृतिक क्रांति के जरिये एक अत्यंत आवश्यक चीज को उन्हें करना चाहिए था–वह है माओ त्से-तुंग को आम जनता तथा देश के सामने ईश्वर बनाने की बजाय कम से कम पार्टी में इस धारणा को भाववाद की ईश्वरीय धारणा अथवा बुर्जुआ व्यक्ति-नेतृत्व की धारणा, व्यक्तिवाद व अंध धारणा से मुक्त करने के लिए–यह किस तरह द्वन्द्वात्मक विकास के रास्ते मजदूर वर्ग के सामूहिक नेतृत्व के एक विशेषीकृत रूप के तौर पर ऐतिहासिक जरूरत से ही विकसित हुआ है–इसे स्पष्ट सैद्धांतिक आधार पर प्रस्तुत व स्थापित करना था। चीन की पार्टी अभी तक यह करने में सक्षम नहीं हुई है। वे माओ त्से-तुंग को देश के

सामने नेता के तौर पर पेश करने की जरूरत है–इस ढंग से सारे मामले को देख रहे हैं। इसलिए उनका व्यवहार भी बड़े यांत्रिक ढंग का है। उनका तर्क काफी हद तक इस तरह का है कि "जब तक माओ त्से-तुंग ठीक हैं, तब तक इसमें नुकसान क्या है? वे सही नेतृत्व दे रहे हैं और हम उनको मान कर चल रहे हैं। एक नेता तो चाहिए ही।"

लेकिन सवाल को इस तरह से देखने से नहीं चलेगा। इसके दूसरे पहलू को भी देखना होगा। मैं भी मानता हूं कि माओ त्से-तुंग का नाम उन्हें इस ढंग से इस्तेमाल करना होगा। यह जादू की छड़ी जैसा काम करता है। जनता को प्रेरित करने के लिए यह एक अत्यंत शक्तिशाली हथियार है। इसे छोड़ा नहीं जा सकता। इसकी मात्रा में कमोबेश अंतर रहेगा, लेकिन विभिन्न देशों में क्रांति को संगठित करने के लिए इसकी जरूरत तब तक बार-बार दिखाई देगी, जब तक समाज के हर व्यक्ति का सैद्धांतिक स्तर एक विशेष उन्नत स्तर तक नहीं पहुंच जाता है। यहां तक कि पार्टी में भी उस सैद्धांतिक स्तर की क्रांति के समय और क्रांति के बाद भी रक्षा करना हर समय संभव नहीं होता–यह तो साफ दिख ही रहा है। रूसी क्रांति में भी यह देखने को मिला और चीनी क्रांति में भी यह देखा जा रहा है। चीन से आज जो सारे लेख निकल रहे हैं, उनमें यह स्पष्ट दिख रहा है। अर्थात वास्तविक जरूरत से जनता को प्रेरित करने के लिए उन्होंने जनता के सामने माओ त्से-तुंग को नेता के रूप में पेश करने का यह जो तरीका अपनाया है, वह आज उनकी जरूरत को अच्छी तरह पूरी कर रहा है–यह सब तो ठीक है। लेकिन नेतृत्व के विकास से संबंधित इस विषय को विज्ञान-सम्मत द्वन्द्वात्मक युक्ति विज्ञान की नींव पर सैद्धांतिक पहलू से 'वेल रीजनिंग' (सुस्पष्ट युक्ति) एवं इतिहास-सम्मत चर्चा के जरिये स्थापित करने में वे आज भी सक्षम नहीं हुए हैं। अर्थात जब तक सामूहिक नेतृत्व के विशेषीकृत रूप के तौर पर एक नेता का आविर्भाव नहीं होता है, तब तक याद रखना होगा–'सामूहिक नेतृत्व, 'सामूहिक नेतृत्व' कहते हुए चाहे इसका कितना ही दावा करें–यह दरअसल औपचारिक जनवादी नेतृत्व ही रह जायेगा। जब किसी

नेता के जरिये पार्टी के तमाम सदस्यों के सामूहिक चिंतन व सोच-विचार की सामग्रिक तथा सबसे उन्नत व सुन्दरतम अभिव्यक्ति होती है, विज्ञान-सम्मत ढंग से कहने पर केवल तभी पार्टी सामूहिक नेतृत्व को जन्म देने में सक्षम होती है और यही सामूहिक नेतृत्व का ठोस व विशेषीकृत रूप होती है। सामूहिक नेतृत्व के विकास के केवल इसी स्तर पर ही पार्टी में व्यक्तिवाद के छिपे हुए असर की वजह से अति जनवाद (अल्ट्रा डेमोक्रेसी) की जो रुझान अक्सर दिखाई देती है, उसे समूल नष्ट करने तथा जनतंत्र की तरह-तरह की लफ्फाजी की आड़ में सर्वहारा जनवाद की नीति के विरोधी हर प्रकार के व्यक्तिवादी रुझानों को पार्टी जीवन से सम्पूर्ण रूप से निर्मूल करना संभव होगा। सामूहिक नेतृत्व के संबंध में चीन के लेखों में अभी भी अति सरलीकृत धारणा की झलक देख रहा हूं। अभी भी वे उसी औपचारिक जनवाद की नीति के अनुसार कमेटी के बहुमत के निर्णय को ही पार्टी का सामूहिक नेतृत्व मानते हैं। सामूहिक नेतृत्व की अवधारणा को वे आज भी उन्नत करने में सक्षम नहीं हुए हैं। एक तरफ माओ त्से-तुंग का महान नेता के रूप में ऐतिहासिक आविर्भाव और दूसरी तरफ नेतृत्व के बारे में चीन की पार्टी की धारणा यदि इसी स्तर की रह जाये, तब सिर्फ आम कार्यकर्ता ही नहीं, यहां तक कि नेता भी अंध एवं यांत्रिक आचरण के शिकार हो जायेंगे। जो सब नेता एवं सक्रिय कार्यकर्ता इस आन्दोलन का संचालन कर रहे हैं, यदि वे लम्बे अर्से तक नेतृत्व के बारे में इस तरह की यांत्रिक धारणा का शिकार बने रहें, तो इतनी बड़ी सांस्कृतिक क्रांति के बाद भी चीन के समाज तथा पार्टी में गुरुवाद के तमाम कुफल एक के बाद एक सर उठाएंगे। अतः इस संदर्भ में अभी से सचेत हो जाना जरूरी है।

उद्धरणों के इस्तेमाल में यांत्रिकता का प्रभाव

हाल ही में चीन की पार्टी के कार्यकर्ताओं व जनसाधारण के बीच आम तौर पर उद्धरण देते रहने का और खासकर माओ त्से-तुंग के उद्धरणों की रट लगाने का एक प्रबल रुझान दिखाई दे रहा है। जरूरत पड़ने पर और दूसरे पक्ष को सच्चाई का एहसास

करवाने के लिए इससे सुविधा होती है। इस वजह से अनेकों समय अथोरिटी को 'कोट' करने (उद्धरण देने) की जरूरत होती है। इसकी जरूरत होती है–यह बात सही है। लेकिन ठीक ढंग से न समझकर कि किस अर्थ में एवं किस संबंध में, कौन-सी समस्या के रूबरू होकर बात को रखा गया था, इसे बारीकी से न समझकर अपने-अपने फौरी उद्देश्य की पूर्ति के इरादे से अंधे की तरह कोटेशन इस्तेमाल करते रहने से उसके द्वारा अनेकों विपत्तियां पैदा हो सकती हैं एवं हो भी रही हैं। जैसे 11वें प्लेनरी अधिवेशन के जो दस्तावेज प्रकाशित हुए हैं उनमें एक जगह पार्टी बॉडी के पदों पर आसीन जो सब नेता सांस्कृतिक क्रांति का विरोध कर रहे हैं, उनके खिलाफ यह कहकर आक्रमण किया जा रहा है कि उन्होंने निर्देश दिया है 'सांस्कृतिक क्रांति में भाग लेने वाले सभी कार्यकर्ताओं को पार्टी बॉडी के फैसले को मानकर चलना होगा।' उनके इस निर्देश के खिलाफ आलोचना करते हुए कहा गया है कि "यह निर्देश कार्यकर्ताओं में अंधता व दासता की मानसिकता को बढ़ाएगा। कारण, माओ त्से-तुंग कह रहे हैं, 'एवरी कम्युनिस्ट शैल यूज हिज ओन हैड' अर्थात पार्टी में जो निर्णय होगा, उसे अमल में लाते वक्त हर कम्युनिस्ट अपने दिमाग का इस्तेमाल करेगा।" इस ढंग से कहने से पार्टी-विरोधी नेताओं के खिलाफ संघर्ष का तात्कालिक उद्देश्य शायद पूरा हो जायेगा। लेकिन जाहिर है इस तरह से तर्क करने का बुरा परिणाम भविष्य में पार्टी के अंदरूनी जीवन में दिखाई देगा। हर कोटेशन को वास्तविक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में ही इस्तेमाल करना चाहिए। लेकिन इस क्षेत्र में ऐसा नहीं किया गया। वास्तविक परिस्थिति का विश्लेषण करके कि किस अर्थ में तथा कौन-से सत्य को उजागर करने में यह कोटेशन मदद करेगा, उसका जरा भी ख्याल किये बगैर, उस पद्धति के बारे में पार्टी बॉडी के उपरोक्त निर्देश के खिलाफ कोटेशन का इस्तेमाल किया गया है–जिस पद्धति का अनुसरण किसी भी जनवादी रूप से केन्द्रीकृत कम्युनिस्ट पार्टी का काम-काज चलाने के लिए निहायत जरूरी है। पार्टी बॉडियों की अंदरूनी संगठनात्मक प्रकृति में कौन-सी विशेष स्थिति उत्पन्न होने की वजह से इस क्षेत्र में इस तरह के

निर्देश का उल्लंघन करना ही माओ त्से-तुंग की क्रांतिकारी लाइन पर चलने वाले कम्युनिस्टों के लिए असली नीति सम्मत स्वाधीन चेतना व नैतिक स्तर तथा अनुशासन का परिचायक है, उसकी विस्तृत रूप से चर्चा करके न दिखाने की वजह से भविष्य में कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं में नीतिहीन स्वाधीन आचरण का रुझान दिखाई दे सकता है। चूंकि अंधतापूर्ण अनुशासन की धारणा तोड़नी है, इसलिए अपने फौरी स्वार्थों की पूर्ति हेतु नीतिहीन स्वाधीन आचरण के रुझान को प्रश्रय देना है—यह निस्संदेह मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी के अनुशासन बोध व नीति का विरोधी है।

पार्टी के जो सब नेता सांगठनिक पदाधिकारी के पद पर आसीन हैं, यदि वे अपने पद का दुरुपयोग कर पार्टी की क्रांतिकारी राजनैतिक लाइन के आधार पर जिस सांस्कृतिक क्रांति को संगठित किया जा रहा है, उसे रोकने के नापाक इरादे से पार्टी अनुशासन की इस नीति का सहारा ले रहे हों, तो उस हालत में उनके खिलाफ निश्चित ही कठोर संघर्ष चलाना होगा। अनुशासन तथा पार्टी के प्रति वफादारी संबंधी नीति की सही समझदारी निर्मित करने के उद्देश्य से वास्तविक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में ही माओ त्से-तुंग के इस कोटेशन को देने की सार्थकता है। जहां किसी पार्टी नेतृत्व के खिलाफ संघर्ष बुनियादी चरित्र का है और एक संघर्ष, जिसे पार्टी के सर्वोच्च नेतृत्व ने ही चालू किया है और करने की सहमति दी है, वहां पार्टी नेता, पार्टी के पदों पर रहने का फायदा उठाकर 'पार्टी बॉडी के निर्देश को मानकर चलना होगा'—इस तर्क के जरिये जो नेता संघर्ष को ही खत्म करना चाहते हैं, वे दरअसल नेतृत्व के निहित स्वार्थी तत्वों एवं कार्यकर्ताओं में अंधता व दासता की मनोवृत्ति को ही बनाये रखने की कोशिश कर रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में माओ त्से-तुंग के उद्धरण का इस्तेमाल करने पर मेरे लिए कहने को कुछ नहीं रहता। लेकिन जिस तरह इसका इस्तेमाल चल रहा है, वह निस्संदेह यांत्रिकता के दोष से ग्रस्त है। आज शायद इस ढंग से कहने से उनको दिक्कत हो। लेकिन इस तरह, यांत्रिक ढंग से चीजों को समझने से भविष्य में विरोधी शक्ति फिर इसी युक्ति-तर्क से ही जनसाधारण को नेतृत्व के खिलाफ इस्तेमाल

कर सकती है। अत: इसमें खतरा है। आज सांस्कृतिक क्रांति के जरिये विरोधी शक्तियों के खिलाफ यह जो तीव्र संघर्ष संचालित हो रहा है–इसका उद्देश्य क्या है? इसका उद्देश्य है, अंत तक पचानवे फीसदी पार्टी सदस्यों व जनसाधारण के बीच सम्पूर्ण एकता और चिंतन की एकरूपता कायम करना। अंतत: इसका मायने है कि वे 'केन्द्रीयता' को ही पुन: प्रतिष्ठित करना चाह रहे हैं और उसे और भी मजबूत करना चाह रहे हैं। उन्होंने पार्टी के भीतर तथा पार्टी व जनसाधारण के संबंध में उन्नततर केन्द्रीयता निर्मित करने के लिए ही इस तरह के अनूठे, महान व जटिल संघर्ष को शुरू किया है। इसलिए सिर्फ फौरी सुविधा को मद्देनजर रखते हुए ही किसी तरह का आचरण करना उचित नहीं है।

जैसे माओ त्से-तुंग की एक और बात को ले लीजिए। "नागरिक जानेंगे, जबकि सैनिक जानेंगे तथा काम करेंगे।" अर्थात नागरिकों को केवल जानने से ही चलेगा। 'लेकिन सैनिक वही होते हैं, जो जानते हैं तथा काम करते हैं, क्रिया करते हैं।' यद्यपि बात नयी नहीं हैं, फिर भी उसकी अभिव्यक्ति कितनी सुंदर है। नागरिकों को अर्थात आम आदमी को क्रांति के सिद्धांत तत्व को, क्रांतिकारी आन्दोलन को कम से कम मोटे तौर पर जानना जरूरी है। सभी लोग सक्रिय आन्दोलन में भाग नहीं लेते। लेकिन क्रांति के सिद्धांत-तत्व को मोटे तौर पर एहसास करने के परिणामस्वरूप नागरिक निष्क्रिय समर्थक में बदल जाते हैं। वे केवल जानते हैं एवं मोटे तौर पर एहसास करते हैं, क्रिया नहीं करते। लेकिन उनके इस जानने व सतही समझदारी में एक प्रच्छन्न क्रिया रहती है, जिससे वे क्रांति के निष्क्रिय समर्थक बनते हैं और एक समूह के लोग, जो आन्दोलनों में सक्रिय हिस्सा लेते हैं, उन्हें माओ त्से-तुंग ने सैनिक की संज्ञा दी है। उन्हें इस तरह जानना चाहिए, जिससे कि वे सिद्धांत-तत्व को वास्तव में प्रयोग करने में सक्षम हों। यहां 'जानना' शब्द को यथार्थ ज्ञान के अर्थ में इस्तेमाल किया गया है। इस बात के जरिये 'जानने' के दो स्पष्ट स्तरों को सुंदर ढंग से पेश किया गया है। एक सतही तौर पर जानना और दूसरा जानने का अर्थ है यथार्थ ज्ञान अर्जित करना। लेकिन सही अर्थ व तात्पर्य को

न समझकर अंधे की तरह उद्धरण देने की बुरी आदत रहने के कारण कई लोग सोचते हैं कि संघर्ष में सक्रिय रूप से भागीदारी किये बगैर ही सिद्धांत-तत्व को जाना जा सकता है। कारण, माओ त्से-तुंग ने कहा है कि नागरिक केवल जानेंगे, जबकि सैनिक जानेंगे तथा क्रिया करेंगे। अत: संघर्ष से जुड़े न रहते हुए भी एवं काम न करते हुए भी उनको जानने में मुश्किल क्या है? इसलिए देखा गया कि अनेकों ऐसा सोचते हैं कि संग्राम के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़े बिना अर्थात सैनिक बने बिना भी—वे मार्क्सवादी-लेनिनवादी हैं। ये सब महानुभाव संघर्ष से अलग रहकर ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद को जानकर उनके सिर पर बैठकर उनका भेजा खाते रहेंगे, जो सच्चे सैनिक हैं, कार्यकर्ता हैं। अत: इतनी सुंदर बात को भी सटीक रूप से न समझ पायें, तो उससे कितनी असुविधा तथा झंझट पैदा होती है—उसका कोई हिसाब नहीं। इसलिए संदर्भ (कन्टेक्स्ट) को छोड़कर बात करने या समझने से नहीं चलेगा। बातों को अपने-अपने परिप्रेक्ष्य में बड़े ही संगत, कारगर तथा यथोचित ढंग से प्रयोग करने से उसका असर भी अच्छा होता है। एक जगह एक स्थिति में जो बात सत्य को प्रतिफलित करती है, अन्य स्थिति में और अन्य जगह वह सत्य को प्रतिफलित नहीं करती। कोटेशनों के दुरुपयोग से संबंधित चर्चा फिलहाल यहीं तक।

समाजवादी व्यवस्था में नयी तरह के व्यक्तिवाद के विरुद्ध सैद्धांतिक संघर्ष को चलाने में अक्षमता

सांस्कृतिक क्रांति में सैद्धांतिक और वैचारिक संघर्ष को चलाने के मामले में एक और प्रधान कमजोरी देखने को मिली है, जो अत्यंत गंभीर है। सैद्धांतिक व वैचारिक आन्दोलन के क्षेत्र में इस कमजोरी को दूर नहीं कर पाने से—जिस संशोधनवाद को वे सामाजिक जीवन से जड़ से उखाड़ फेंक देना चाहते हैं, संशोधनवाद का वह झुकाव सांस्कृतिक क्रांति के सामने पेश आ रही फौरी समस्याओं का समाधान हो जाने के बाद भी भविष्य में फिर दिखाई देने की आशंका रह ही जायेगी। वे सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से पुराने समाज की सोच-विचार एवं बुर्जुआ चिंतनधारा तथा व्यक्तिवाद के प्रभाव को दूर

कर सर्वहारा क्रांतिकारी राजनीति की विजय पताका को लहराना चाह रहे हैं। बुर्जुआ व पुरानी प्रतिक्रियावादी संस्कृति का जो प्रभाव पार्टी तथा सामाजिक जीवन में आज भी बरकरार है, वे उसके खिलाफ संघर्ष चला रहे हैं, जबकि प्रोलेतेरियन संस्कृति के स्वरूप के बारे में एक पूरा-पूरा खाका वे आज भी जनता के सामने रखने में सक्षम नहीं हुए। बुर्जुआ मानवतावादी संस्कृति की नीति नैतिकता व मूल्यबोध की धारणा के साथ प्रोलेतेरियन (सर्वहारा) नीति-नैतिकता व मूल्यबोध की धारणा का बुनियादी फर्क कहां है–इस बारे में वे आज भी इतिहास सम्मत किसी सिद्धांत को पेश करने में सक्षम नहीं हुए। यह सच है कि वे बुर्जुआ मानवतावाद के खिलाफ प्रोलेतेरियन मानवतावाद की बात कर रहे हैं, लेकिन जरा गौर करने से ही पकड़ में आ जायेगा कि उनका यह संघर्ष मुख्यतः बुर्जुआ विचारधारा और राजनीतिक विचारधारा के खिलाफ संचालित है। सामग्रिक तौर पर बुर्जुआ मानवता के खिलाफ जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं हो रहा है। जीवन के मूल्यबोध एवं नीति-नैतिकता के क्षेत्र में वे मानवतावादी धारणा के विरुद्ध आज भी सर्वहारा संस्कृति के मूल्यबोध व न्याय-नीति की धारणा को स्थापित करने में सक्षम नहीं हैं। फलस्वरूप चीन के समाज की वर्तमान स्थिति के इस दौर में वैचारिक संघर्ष चलाने के क्षेत्रों में जिन सब सिद्धांतों व वक्तव्यों को वे पेश कर रहे हैं, वे चीन के समाज से व्यक्तिवाद के प्रभाव को दूर करने में अधूरे हैं। आज जिस समस्या से चीन की सामाजिक व्यवस्था रूबरू हुई है, उसका जो एक नया पहलू है, वह है, समाजवादी सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक तथा राजनैतिक रूप से तुलनात्मक रूप से स्थायित्व हासिल होने के साथ-साथ व्यक्ति स्वाधीनता, व्यक्ति मुक्ति व व्यक्ति स्वातंत्र्यबोध सुविधा के साधन में परिवर्तित होने का रुझान देखा जा रहा है, जिसे मैने पहले ही समाजवादी व्यक्तिवाद की संज्ञा दी है, जिसका अर्थ है समाजवादी व्यवस्था में एक नये किस्म का व्यक्तिगत अवसरवाद। इसलिए सिर्फ पुराने सिद्धांतों की नित्य नये सिरे से रट लगाने से जनगण के ऊपर उसके प्रभाव को मिटाया नहीं जा सकेगा। आज जो हालात मौजूद हैं, इनके बाद समाज में एक सापेक्ष स्थायित्व आयेगा। फिर कुछ समय बाद एक आन्दोलन की लहर आयेगी,

उसके बाद फिर एक स्थायित्व आयेगा और इस प्रत्येक स्थायित्व काल में ही यह नये ढंग का व्यक्तिवाद अनजाने में ही शक्ति संचय करता जायेगा और उसका असर पार्टी एवं नेतृत्व पर अवश्यम्भावी रूप से पड़ेगा। आज भी चीन की पार्टी जिन मूल्यबोधों के आधार पर वैचारिक आह्वान से जनगण को प्रेरित कर रही है, प्रेरणा दे रही है, याद रखना होगा, वह मूलतः बुर्जुआ मानवतावादी मूल्यबोध के आधार पर त्याग की विचारधारा है—अर्थात 'समाज के प्रति कर्तव्य, सामाजिक स्वार्थ एवं क्रांति के स्वार्थ के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ को 'सरेंडर' (समर्पित) करना होगा।'—इस वक्तव्य का मूल सुर बुर्जुआ मानवतावादी मूल्यबोध का ही सुर है। जनता को प्रेरित करने के लिए, अनुप्राणित करने के लिए इससे उन्नत कोई न्याय-नीति की धारणा, सर्वहारा न्याय-नीति व मूल्यबोध की धारणा का अन्य कोई विकसित हथियार आज भी उनके पास नहीं है।

न्याय-नीति तथा मूल्यबोध की वही पुरानी धारणा एवं माओ त्से-तुंग की पुरानी बातों के द्वारा आज भी वे जनता को संचालन करने की कोशिश कर रहे हैं। चीनी क्रांति संगठित होने से पहले वर्ग संघर्ष का जो रूप था और उसकी जो समस्या थी, उन सब पर तथा क्रांति के बाद चीन के समाज की वर्तमान समस्याओं में से बहुत सारी चीजों पर माओ त्से-तुंग के लेखों के जरिये असर पड़ा है। परिणामस्वरूप आज जो लोग वियतनाम के जंगल में लड़ रहे हैं, उन्हें अथवा वर्ग संघर्ष के जिस स्तर पर अभी हम लोग हैं, हमारे देश के जनसाधारण को माओ त्से-तुंग के ये पुराने लेख काफी हद तक प्रभावित कर सकते हैं। लेकिन जो तुलनात्मक रूप से और भी उन्नततर स्तर पर होंगे समाजवादी सामाजिक व्यवस्था की उस नयी पीढ़ी के कम्युनिस्टों के लिए आज माओ त्से-तुंग के इन सब पुराने वक्तव्यों का पूरी तरह वही मायने तथा वही प्रभाव नहीं हो सकता। फलस्वरूप, माओ त्से-तुंग के पुराने अनेकों वक्तव्य ही उस अर्थ में कुछ हद तक अकार्यकारी (ओब्सोलीट), कुछ हद तक निःशेषित हो गये हैं। स्वाभाविक रूप से आज चीन में समाजवादी सामाजिक व्यवस्था में नये सिरे से सर्वहारा न्याय-नीति की धारणा तथा संस्कृति की मूल बातें क्या होंगी, वक्तव्य का

विषय क्या होगा, वह आज साफ-साफ देश के जनसाधारण व कम्युनिस्टों के सामने रखना होगा। जो सब देश तुलनात्मक रूप से कुछ हद तक आर्थिक स्थायित्व में हैं एवं जिन सब बुर्जुआ जनवादी देशों में व्यक्ति-स्वाधीनताबोध एक सुविधा के साधन में परिवर्तित हो गया है, यदि उन सब देशों के कम्युनिस्टों तथा प्रगतिशील व्यक्तियों को क्रांतिकारी चेतना से प्रेरित करना है, तो आज बुर्जुआ मानवतावादी मूल्यबोध की सीमाबद्धता कहां है तथा कहां-कहां उसकी प्रतिक्रियावादी भूमिका है, वह दिखा देना होगा और सर्वहारा संस्कृति व मूल्यबोध की नयी धारणा क्या होगी, वह भी जनसाधारण व कम्युनिस्टों के सामने रखनी होगी।

आज की इस जटिल परिस्थिति में कम्युनिस्ट मूल्यबोध का पुराना स्तर अपर्याप्त हो गया है

'व्यक्ति स्वार्थ को सामाजिक स्वार्थ के साथ संगतिपूर्ण करना होगा', 'व्यक्ति स्वार्थ को सामाजिक स्वार्थ के मातहत करना होगा'—यह चेतना मूलतः बुर्जुआ मानवतावाद की चेतना है—वह मैं पहले ही कह चुका हूं और 'जो सामाजिक स्वार्थ के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ को बिना शर्त मातहत कर सकते हैं, हर वक्त पार्टी व क्रांति के स्वार्थ को ऊपर मानते हैं एवं उसके सामने व्यक्तिगत स्वार्थ को बिना शर्त सरेण्डर कर सकते हैं, वही सच्चे कम्युनिस्ट हैं'—आज तक कम्युनिस्ट मूल्यबोध का सर्वोच्च स्तर यही था। कालिनिन की किताब 'कम्युनिस्ट एजुकेशन' में इसे ही सही कम्युनिस्ट चेतना का उच्चतर स्तर कहा गया है। ल्यू शाओ-ची की 'हाउ टू बी ए गुड कम्युनिस्ट' (एक अच्छा कम्युनिस्ट कैसे बनें) किताब में भी (यद्यपि हाल ही में उस किताब के खिलाफ काफी आलोचना की जा रही है, लेकिन चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के द्वारा यह किताब अनुमोदित थी एवं एक समय बहुत सराहनीय दस्तावेज मानी जाती थी) इसी को सही कम्युनिस्ट स्तर माना गया है। लेकिन आज की नयी परिस्थिति में यह ऊंचे दर्जे के सच्चे कम्युनिस्ट का स्तर नहीं रह सकता। क्योंकि देखा जा रहा है कि इस युग में शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था के अधीन रहते हुए व्यक्ति स्वाधीनता

व स्वातंत्र्य बोध भी व्यापक पैमाने पर अवसरवाद में परिवर्तित हो रहा है तथा व्यक्ति की सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीनता की मानसिकता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। समाजवादी सामाजिक व्यवस्था में बुर्जुआ अर्थ में समानता का अधिकार वास्तव में प्रतिष्ठित होने के बाद व्यक्ति स्वाधीनता तथा स्वातंत्र्य बोध बुर्जुआ व सामंतवादी उत्पीड़न से पूरी तरह मुक्ति पा चुका है एवं व्यक्ति बुर्जुआ सामाजिक व्यवस्था की तुलना में अधिक से अधिक आजादी एवं सुविधाओं-सहूलियतों का उपयोग कर रहा है। लेकिन राजसत्ता के रह जाने की वजह से व्यक्ति का मुक्ति-संघर्ष जिस नये ऐतिहासिक दौर में प्रवेश कर रहा है, उसके कारण व्यक्ति के मुक्ति-संघर्ष के सामने आज मूल समस्या क्या है, उस बारे में साफ सैद्धांतिक व इतिहास सम्मत सही धारणा निर्मित नहीं कर पाने से समाजवादी सामाजिक व्यवस्था में उत्तरोत्तर सुविधाओं का उपभोग करते रहने के फलस्वरूप कम्युनिस्टों के बीच भी व्यक्ति स्वाधीनता व स्वातंत्र्य बोध नये सिरे से अवसरवाद को जन्म देगा। अतः समाजवादी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति का मुक्ति-संघर्ष आज जिस नयी समस्या से रूबरू है, उस पर रोशनी डालनी होगी।

समाजवादी व्यक्तिवाद के प्रभाव से समाज मुक्त हुए बिना राजसत्ता विलुप्त नहीं होगी

व्यक्ति-स्वार्थ के साथ सामाजिक-स्वार्थ का जो द्वन्द्व है, उसका स्वरूप विरोधात्मक है। उत्पादन संबंधी अन्य बाकी सभी समस्याओं का समाधान हो जाने के बाद भी यह विरोधात्मक द्वन्द्व जब तक बरकरार रहेगा, तब तक राजसत्ता विलुप्त नहीं होगी। राजसत्ता—चाहे वह समाजवादी राजसत्ता ही क्यों न हो—वह दमन-उत्पीड़न का यंत्र है। बुर्जुआ राजसत्ता के साथ समाजवादी राजसत्ता का फर्क केवल यही है कि जहां बुर्जुआ राजसत्ता एक फीसदी लोगों के स्वार्थ में निन्यानवे फीसदी लोगों की आजादी का गला घोंटने का दमनकारी यंत्र है, वहीं समाजवादी राजसत्ता निन्यानवे फीसदी लोगों के हित में एक फीसदी लोगों के समाजवाद-विरोधी तथा प्रगति-विरोधी प्रतिक्रियावादी आचरण की स्वाधीनता का दमन करने वाला यंत्र है।

अत: व्यक्तिगत स्वार्थ तथा सामाजिक स्वार्थ के बीच विरोधात्मक द्वन्द्व के प्रतिफलन के तौर पर राजसत्ता जब तक बरकरार रहेगी, तब तक समाजवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति को सामाजिक स्वार्थ के सामने 'सब्मिट' (आत्मसमर्पण) करना ही पड़ेगा तथा तब तक समाजवादी राजसत्ता के दमनात्मक चरित्र के खिलाफ व्यक्ति मानस में विद्रोह करने की प्रवृत्ति बार-बार दिखाई देती रहेगी। इसके परिणास्वरूप सामाजिक लक्ष्य बार-बार मार खाता रहेगा। बार-बार व्यक्ति विद्रोह करेगा और उसमें सामाजिक उदासीनता की मानसिकता बढ़ती जायेगी। फलस्वरूप, कम्युनिस्ट विचारधारा की जो शक्ति है, निष्ठा-लगन का जो बल है, वह घटता जायेगा। अथवा एक और चीज होगी—उदारीकरण। अर्थात लगातार मांग उठेगी कि व्यक्ति के अधिकारों को और बढ़ाया जाये। और इस तरह चलते रहने से यह फिर संशोधनवाद को जन्म देगा तथा पूंजीवाद को ही वापस लाने में मदद करेगा।

इसलिए इस समस्या को इस तरह समझना होगा कि समाजवाद में अधिकार किसी से प्राप्त करने का सवाल नहीं है अर्थात सत्तासीन किसी वर्ग के खिलाफ लड़कर स्वाधीनता तथा अधिकार हासिल करने का सवाल नहीं रहा है। वर्ग संघर्ष के चलते रहने के कारण समाजवादी सामाजिक व्यवस्था में राजसत्ता का जो उत्पीड़न कुछ हद तक है, मूलत: समाजवादी व्यवस्था के विकास के साथ-साथ व्यक्ति स्वाधीनता का विकास व सम्पूर्ण मुक्ति हासिल करने की राह में बाधास्वरूप किसी-किसी व्यक्ति के हीन व्यक्तिकेन्द्रित आचरण व सत्ता से उखाड़ दिये गये बुर्जुआ वर्ग की षड्यंत्रकारी कार्रवाइयों को रोकने के उद्देश्य से ही उसकी जरूरत है। अभी जो समस्या है, वह किसी शासक वर्ग के द्वारा व्यक्ति का शोषण करने के लिए दमन-उत्पीड़न किया जा रहा है—बात ऐसी नहीं है। समाजवादी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति स्वाधीनता संबंधी पुराने बुर्जुआ संस्कार एवं मानसिकता ही नयी परिस्थिति में नये ढंग के स्वाधीनता संग्राम के संचालन में एक बाधा बनकर खड़ी है—जो मानसिकता सामाजिक जरूरत के साथ व्यक्ति की जरूरत का मेल नहीं होने दे रही है और यही आज की नयी परिस्थिति में व्यक्ति

की मुक्ति के रास्ते में प्रधान बाधा है। यदि यह रह जाये, तो आर्थिक क्षेत्र में वर्गों की विलुप्ति के बाद भी वर्ग संघर्ष का पूरी तरह खात्मा नहीं होगा तथा व्यक्तिवाद के जहरीले असर के कारण तब भी सामाजिक जीवन से राजसत्ता की विलुप्ति नहीं होगी। इसलिए व्यक्ति को दमन से पूर्ण मुक्ति नहीं मिलेगी, क्योंकि राजसत्ता के रहने से किसी न किसी रूप में उसका दमनकारी चरित्र भी रहता है।

सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्ति स्वार्थ को एकात्म कर पाने से ही व्यक्ति की सही मुक्ति होगी

इसलिए समाजवादी क्रांति के पूर्ण विजय अभियान में व्यक्ति की स्वाधीनता हासिल करने के संग्राम के संचालन का प्रधान लक्ष्य है–व्यक्ति की जरूरत के साथ सामाजिक जरूरत के द्वन्द्व का जो विरोधात्मक चरित्र है, उसे मिलनात्मक चरित्र में रूपांतरित करना। सांस्कृतिक क्रांति के जरिये इस संघर्ष में पूर्ण सफलता हासिल कर पाने से ही व्यक्ति की आशाओं-आकांक्षाओं की विषय-वस्तु और उसका रूप-स्वरूप बुनियादी तौर पर बदल जायेगा। एक के बाद एक सांस्कृतिक क्रांति के जरिये समाजवादी सामाजिक व्यवस्था इस स्तर पर पहुंचने के बाद ही राजसत्ता 'विदर अवे' हो सकती है अर्थात विलुप्त हो सकती है। केवल मात्र तभी व्यक्ति हर प्रकार के सामाजिक दमन-उत्पीड़न से मुक्त होगा। अतः हम देखते हैं कि समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति का मुक्ति-संग्राम एक नये जटिल चरण में आ पहुंचा है और एक नया रूप धारण कर लिया है–जहां इस समस्या के समाधान के लिए निरंतर साधना व संघर्ष के जरिये व्यक्तिगत स्वार्थ को सामाजिक स्वार्थ के साथ विलय कर देने के लिए और भी जोरदार कठोर संघर्ष चलाना होगा। अतएव न्याय-नीति व मूल्यबोध का यह एक नया स्तर है, जो पुराने बुर्जुआ मानवतावादी मूल्यबोध, जिन्हें कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आन्दोलन में कार्यकर्ताओं को प्रेरित करने के लिए अब तक इस्तेमाल किया जाता रहा, उससे सम्पूर्णतः भिन्न है। अब तक प्रोलेतेरियन क्रांतिकारी राजनीति में नैतिकता का जो स्तर काम करता रहा है, वह है–वृहत्तर सामाजिक

स्वार्थ के सामने व्यक्ति स्वार्थ को गौण मानना। लेकिन आज समाजवादी समाज में नयी परिस्थिति में चेतना का वही स्तर रहने से पूर्ण निष्ठा-लगन संभव नहीं है, व्यक्तिवाद के रुझान को रोकना भी संभव नहीं है। कम्युनिस्ट नैतिकता का स्तर यदि इसी जगह रह जाये, तो सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति तथा सर्वहारा राजनीति को लगातार क्रांतिकारी उन्नततर परिवर्तन की ओर ले जाने की हजारों बड़ी-बड़ी बातें करने के बावजूद समाज में व्यक्तिवाद का रुझान रह ही जायेगा। जब तक त्याग की मानसिकता रहेगी, तब तक समाज के अंदर किसी न किसी रूप में अहम् व व्यक्तिवाद का प्रभाव भी काम करेगा। अतः त्याग की मानसिकता को वास्तविक जरूरत के एहसास के स्तर तक ऊंचा उठाना होगा।

उपरोक्त चर्चा से एक बात साफ है कि पुरानी बुर्जुआ विचारधारा कितने सूक्ष्म ढंग से तथा नित्य नये रूप में समाज में काम करती रहती है। मेरा अनुमान है कि चीन के नेतागण व्यक्तिवाद के खिलाफ संघर्ष करते-करते मूल समस्या को समझने में काफी दूर तक बढ़े हैं, लेकिन जिस समस्या के बारे में मैंने उपरोक्त चर्चा की है उसे परिष्कृत सैद्धांतिक आधार पर वे अभी भी खड़ा नहीं कर पाये हैं।

सैद्धांतिक त्रुटियां दूर न कर पाने से भविष्य में संशोधनवाद की संभावना से चीनी समाज मुक्त नहीं होगा

विषय को पहले कॉन्सेप्शन (अवधारणा) में सैद्धांतिक नींव पर खड़ा करना होगा, उसके बाद उसके आधार पर इस नये नैतिकता बोध की सृष्टि करने का देशव्यापी एक प्रबल आन्दोलन गठित करना होगा। लेकिन चीन की सांस्कृतिक क्रांति अभी तक इस समस्या को इस तरह 'टेक अप' (ग्रहण) करने में सक्षम नहीं हुई है। इस सांस्कृतिक क्रांति का उद्देश्य है, जो व्यक्तिवाद नेताओं व कार्यकर्ताओं को पूंजीवादी रास्ते पर ले जा रहा है, बुर्जुआ विचारधारा का शिकार बना रहा है, जो अफसरशाही की तरह आचरण कर रहे हैं, आचरण में अर्थवाद का रुझान दिख रहा है, संशोधनवादी दृष्टिकोण लेकर चल रहे हैं, फौज में सर्वहारा

क्रांतिकारी राजनीतिक चेतना के आधार पर एकता की बजाय हथियारों के आधुनिकीकरण पर जोर दे रहे हैं–इन सभी के खिलाफ संघर्ष करना, इन्हें दूर करना। इन सभी त्रुटियों को दूर कर जनता को उससे मुक्त कर वर्तमान में चीन की मूल समस्याओं के सामने एवं तमाम विरोधी ताकतों के खिलाफ चीन की जनता 'एक इन्सान' की तरह खड़ी हो सके–ऐसी स्थिति पैदा करना। फिलहाल इन कामों को कर पाने से ही वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति का फौरी उद्देश्य पूरा होगा, लेकिन भविष्य में पार्टी में संशोधनवाद के दोबारा उभर आने की संभावना से पार्टी को पूरी तरह मुक्त करना सांस्कृतिक क्रांति के वर्तमान कार्यक्रम से संभव नहीं होगा, क्योंकि समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति का मुक्ति-संघर्ष जिस नयी जटिल परिस्थिति से रूबरू होता है, उसके बारे में इस सिद्धांत को ही वे अब तक सही-सही पकड़ नहीं पाये हैं एवं कम से कम पार्टी के भीतर कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं को समाज के प्रति कर्तव्यबोध से प्रेरित करने, चेतना से लैस करने के संघर्ष में इस सिद्धांत को सांस्कृतिक आन्दोलन के मूल केन्द्र बिन्दु के तौर पर आज भी संयोजित नहीं कर पाये हैं। उपरोक्त सिद्धांत के आधार पर देशव्यापी संघर्ष व नैतिकता के संचार का आन्दोलन शुरू कर पाने से यह अहसास होना संभव है कि इसी रास्ते ही व्यक्ति की सही मुक्ति संभव है। वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति की यह एक बुनियादी कमजोरी है।

यदि यह कमजोरी बरकरार रही, तो सांस्कृतिक क्रांति के सामने उसकी जो वर्तमान समस्याएं हैं, वे तो दूर होंगी, वर्तमान जो फौरी लक्ष्य है, वह तो पूरा होगा, लेकिन इसके साथ-साथ यह सांस्कृतिक क्रांति बहुत से मसले ले आयेगी, जो अनसुलझे रह जायेंगे। मसलन, नेतृत्व के संबंध में यांत्रिक धारणा रह ही जायेगी। यह दूर नहीं होगी। दूसरा, व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति जिस कारण से है, उस कारण को दर्शन व सिद्धांत की सहायता से वे अभी तक भी पकड़ तथा समझ नहीं पाये हैं। व्यक्तिवाद अर्थात समाजवाद में व्यक्तिवाद का जो रुझान है–उसकी प्रकृति क्या है तथा कैसे उसे दूर किया जाये–उसके बारे में भी मौलिक वक्तव्य वे 'पिन प्वाइंट' (सुनिर्दिष्ट)

करके रख नहीं पाये हैं एवं उसके आधार पर नेता से लेकर कार्यकर्ताओं तक एक व्यापक संग्राम को शुरू नहीं कर पाये हैं। फलस्वरूप, इतनी बड़ी एक सांस्कृतिक क्रांति के हो जाने के बाद भी यदि इसी बीच चीन की कम्युनिस्ट पार्टी इसे नहीं पकड़ पायी अथवा कोई उन्हें समझा न दे और वे इस सिद्धांत को सांस्कृतिक क्रांति में संयोजित करने में सक्षम न हुए तो नयी पीढ़ी के जो लोग आयेंगे, वे इस नये किस्म के व्यक्तिवाद के फंदे में फंस जायेंगे और उसके द्वारा नये किस्म के संशोधनवाद के 'विक्टिम' (शिकार) हो जायेंगे।

27 अक्तूबर 1967 को दिया गया यह भाषण
पहली बार जनवरी 1968 में
पार्टी के बांग्ला मुखपत्र 'गणदाबी'
के विशेष अंक में
प्रकाशित हुआ था।